अध्याय

1

राजस्थान का इतिहास : एक परिचय

1949 ई. से पूर्व राजस्थान नाम से किसी भौगोलिक इकाई का अस्तित्व नहीं था। ऐसा माना जाता है कि 1800 ई. में सर्वप्रथम जॉर्ज थामस ने इस भू–भाग के लिए 'राजपूताना' शब्द का प्रयोग किया था। इसके बाद 1829 ई. में एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान के लेखक कर्नल जेम्स टॉड ने इस पुस्तक में इस प्रदेश का नाम 'रायथान' या 'राजस्थान' रखा। स्वतंत्रता के बाद जब इस प्रदेश की विभिन्न रियासतों का एकीकरण हुआ तो 30 मार्च, 1949 ई. को सर्वसम्मति से इसका नाम राजस्थान रखा गया।

प्राचीन साहित्य और अभिलेखों में वर्तमान राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों के भिन्न–भिन्न नाम मिलते हैं। कुछ क्षेत्र उनकी भौगोलिक विशेषताओं के आधार पर और कुछ क्षेत्र वहां पर बसी जातियों के नामों से जाने जाते थे। राजस्थान के क्षेत्रों के प्राचीनतम नामों में, जिनका उल्लेख ऋग्वेद में भी आया है, 'मरु', 'धन्व', 'जांगल', मत्स्य, 'शूरसेन' आदि हैं। मरु और धन्व दोनों का अर्थ एक ही है और इनका प्रयोग जोधपुर संभाग के मरूस्थल के लिये हुआ है। जोधपुर पहले 'मरू', फिर 'मरूवार' कहलातां था और कालान्तर में इसे 'मारवाड़' कहा जाने लगा। जांगल शब्द का प्रयोग उस क्षेत्र के लिये किया गया है जहां शमी, कैर या पीलू आदि होते हों। बीकानेर और नागौर व आसपास का क्षेत्र 'जांगल देश' कहलाता था। मत्स्य, जिसका उल्लेख महाभारत में एक राज्य के रूप में हुआ है वह जयपुर अलवर और भरतपुर तक विस्तृत था। इसकी राजधानी विराटनगर थी। भरतपुर के मथुरा क्षेत्र से सटे हुए क्षेत्र, धौलपुर और करौली के अधिकांश भाग शूरसेन राज्य में सम्मिलित थे। यह भी एक प्राचीन राज्य था। महाभारत में भी इसका उल्लेख मिलता है।

भौगोलिक विशेषताओं के आधार पर नामित कुछ अन्य क्षेत्र निम्नलिखित हैं : माही नदी के पास का प्रतापगढ़ का भू–भाग 'कांठल' कहलाता था क्योंकि यह क्षेत्र माही नदी के किनारे (कांठे) पर स्थित था। छप्पन गाँवों का समूह होने के कारण प्रतापगढ़–बाँसवाड़ा के मध्य का भू–भाग 'छप्पन का मैदान'

राजस्थान के प्राचीन स्थानीय नाम

कहलाता था। भैंसरोडगढ़ से लेकर बिजौलिया तक का क्षेत्र पठारी होने के कारण 'ऊपरमाल' नाम से जाना जाता था। उदयपुर के आस–पास का प्रदेश पहाड़ियों की अधिकता के कारण 'गिरवा' कहलाता था।

जैसलमेर का प्राचीन नाम 'माँड' था। डूंगरपुर–बाँसवाड़ा क्षेत्र 'बागड़' कहलाता था। कोटा और बूंदी का प्रदेश 'हाड़ौती' नाम से प्रसिद्ध था। सीकर, झुंझुनूं व चूरू का क्षेत्र शेखावाटी नाम से जाना जाता था।

इतिहास का काल विभाजन –

मौटे तौर पर मानव के सम्पूर्ण इतिहास को तीन कालों में विभक्त किया जाता है – (1) प्राक् युग (2) आद्य युग और (3) ऐतिहासिक युग। 'प्राक् युग' इतिहास के उस काल को कहा जाता है जिसके ज्ञान के लिये कोई लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, अर्थात् मानव लेखनकला से अपरिचित था। 'आद्य युग' की संज्ञा इतिहास के उस काल को दी जाती है जिसके लिखित साक्ष्य तो उपलब्ध हैं किन्तु या तो वे अस्पष्ट हैं अथवा उनकी लिपि को अभी पढ़ना सम्भव न हुआ हो। 'ऐतिहासिक युग' उस काल के इतिहास को कहा है जिसके सम्बन्ध में स्पष्ट और सुपठित लिखित साक्ष्य उपलब्ध हैं। इन अर्थों में भारतीय इतिहास के कालक्रम को इस प्रकार से विभक्त कर सकते हैं– (1) प्राक् युग–यह युग सृष्टि के आरम्भ से हड़प्पा सभ्यता के पूर्व तक था। (2) आद्य युग–यह युग हड़प्पा सभ्यता के काल से 600 ई.पू. तक रहा। (3) ऐतिहासिक युग–यह युग 600 ई.पू. से वर्तमान तक जारी है।

प्रागैतिहासिक राजस्थान (प्राक् युग में राजस्थान) –

मानव सभ्यता का उदय नदी–घाटियों में हुआ था क्योंकि नदी घाटियों में जल की प्रचुरता के कारण यहाँ अपने आप उत्पन्न होने वाले कन्दमूल फल भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। सघन वनों के कारण यहाँ मांस हेतु पशु–पक्षी भी आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। सैकड़ों वर्षों पूर्व राजस्थान की भौगोलिक स्थिति ऐसी ही थी। यद्यपि राजस्थान का एक बड़ा भाग आज मरूस्थल है, किन्तु विद्वानों की मान्यता है कि सैंकड़ों वर्ष पूर्व इस मरूस्थली भूमि में समुद्र विद्यमान था और सरस्वती तथा दृषद्वती नदियाँ इस समुद्र में आकर गिरती थीं। यह स्थिति मानव जीवन के लिए सर्वथा उपयुक्त थी। यही कारण है कि ऐसी भौगोलिक स्थिति में राजस्थान को भी मानव सभ्यता के जन्म के प्राचीनतम भू–भागों में से एक होने का गौरव प्राप्त हुआ। मानव सभ्यता के उद्‌भव के इस काल को पाषाण काल कहते हैं, इसे तीन भागों में बांटा गया है– पूर्व पाषाण–काल, मध्य पाषाण–काल तथा उत्तर पाषाण–काल।

पूर्व पाषाण–काल – राजस्थान में मानव का उदय कब हुआ यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है लेकिन यहाँ विभिन्न क्षेत्रों में हुए उत्खननों से प्राप्त विभिन्न प्रकार के पाषाण, विशेष रूप से क्वार्टजाइट पत्थर के अनेक उपकरणों से ज्ञात होता है कि आज से लगभग दो या डेढ़ लाख वर्ष पूर्व राजस्थान में एक मानव संस्कृति विद्यमान थी। 1870 ई. में सी.ए. हैकेट ने सर्वप्रथम जयपुर और इन्द्रगढ़ से पत्थर से बनी पूर्व पाषाणकालीन हस्त कुठार (Hand-axe) खोज निकाली। कुछ समय पश्चात् सेटनकार ने झालावाड़ से इसी युग के अनेक उपकरण खोज निकाले। इसके बाद हुए योजनाबद्ध उत्खनन में भारतीय पुरातत्व और संग्रहालय विभाग, नई दिल्ली, डेक्कन कॉलेज पूना के वीरेन्द्रनाथ मिश्र, राजस्थान पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग के आर.सी. अग्रवाल, डॉ. विजय कुमार, हरिश्चन्द्र मिश्रा आदि विद्वानों ने राजस्थान की पूर्व पाषाणकालीन सभ्यता और संस्कृति के विभिन्न पक्षों को सामने लाने में सराहनीय योगदान दिया है। इनके प्रयत्नों से राजस्थान में अजमेर, अलवर, चित्तौड़, भीलवाड़ा, जयपुर, झालावाड़, जालोर, जोधपुर, पाली, टोंक आदि क्षेत्रों की प्रमुख नदियों, विशेष रूप से चम्बल, बनास व उनकी सहायक नदियों के किनारे पूर्व पाषाणकालीन उपकरण प्राप्त हुये हैं। जालोर से इस युग के उपकरणों की खोज का श्रेय बी. आल्चिन को है। स्पष्ट है कि उपर्युक्त सम्पूर्ण भू–भाग पूर्व पाषाणकालीन संस्कृति का प्रसार क्षेत्र था।

मध्य पाषाण–काल – मानव सभ्यता के क्रमिक विकास की कहानी की दूसरी कड़ी के रूप में राजस्थान

के प्रागैतिहासिक काल में मध्य पाषाण–काल रहा है। पश्चिम राजस्थान में लूनी और उसकी सहायक नदियों, चित्तौड़ की बेड़च नदी घाटी और विराटनगर से मध्य पाषाणकालीन उपकरण मिले हैं। इस काल के उपकरण छोटे, हल्के और कुशलता से निर्मित हैं। ये उपकरण जैस्पर, एगेट, चर्ट, कार्नेलियन, क्वार्टजाइट, कल्सेडोनी आदि पाषाणों से बने हैं, जिनमें ब्लेड (Blade), इग्रेवर (Engraver), ट्रायएंगल (Triangle), क्रेसेन्ट (Crecent), ट्रेपेज (Trapeze), स्क्रेपर (Scraper)), प्वाइंटर (Pointer) आदि उल्लेखनीय हैं। पत्थर के बने इन छोटे उपकरणों को माइक्रोलिथ (लघु पाषाण उपकरण) कहा गया है।

उत्तर (नव) पाषाण–काल – भारत के अन्य भागों की भाँति राजस्थान में भी उत्तर (नव) पाषाणकालीन सभ्यता का उदय हुआ था। अजमेर, नागौर, सीकर, झुंझुनूं, जयपुर, उदयपुर, चित्तौड़, जोधपुर आदि स्थानों से उत्तर पाषाणकालीन सभ्यता के अनेक उपकरण प्राप्त हुये हैं, जिनमें भीलवाड़ा के बागोर और मारवाड़ के तिलवाड़ा नामक स्थानों से प्राप्त उपकरण विशेष रुप से उल्लेखनीय हैं।

राजस्थान में धातु काल

ताम्र–पाषाण, ताम्र एवं ताम्र–कांस्य काल – धातु काल के अन्तर्गत राजस्थान के भी अनेक स्थानों से ताम्र–पाषाण व ताम्रकाल के अवशेष मिले हैं, जो तत्कालीन युग में राजस्थान के मानव के सांस्कृतिक विकास पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। राजस्थान की ताम्रकालीन संस्कृति के प्राचीन स्थलों में गणेश्वर (सीकर), कालीबंगा (हनुमानगढ़), गिलूण्ड (राजसमंद) आहड़ व झाड़ौल (उदयपुर), पिन्ड–पाडलियाँ (चित्तौड़), कुराड़ा (नागौर), साबणिया व पूगल (बीकानेर), नन्दलालपुरा, किराडोत व चीथवाड़ी (जयपुर), एलाना (जालोर), बूढ़ा पुष्कर (अजमेर), कोल माहोली (सवाईमाधोपुर), मलाह (भरतपुर) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

लौह काल – ताम्र और कांस्य काल के पश्चात् लौहे का ज्ञान और उसका प्रयोग मानव इतिहास की युगान्तकारी घटना थी। इसने कृषि उपकरणों तथा हथियारों की गुणवत्ता को बढ़ाकर सारे परिदृश्य को ही बदल दिया। राजस्थान में नोह (भरतपुर), जोधपुरा (जयपुर), सुनारी (झुंझुनूं) रैढ़ (टोंक) आदि स्थानों से लौह संस्कृति के समय के अनेक हथियार और उपकरण मिले हैं। नोह से प्राप्त लौहे के अवशेष भारत में लौह युग के आरम्भ होने की सीमा रेखा निर्धारित करने के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। जोधपुरा तथा सुनारी से लौहे को गलाने की भट्टियाँ और अस्त्र–शस्त्र तथा उपकरण बनाने के कारखानों के अवशेष मिले हैं। रैढ़ को तो लौह सामग्री की प्रचुरता के कारण प्राचीन राजस्थान के 'टाटानगर' की संज्ञा दी गई है।

लौह काल के पश्चात् भारत के अन्य भागों की भाँति राजस्थान में भी सलेटी रंग की चित्रित मृदभाण्ड संस्कृति (Painted Grey Ware – PGW) का उदय हुआ। इस संस्कृति के अवशेष विराटनगर व जोधपुरा (जयपुर), सुनारी, नोह आदि स्थानों से मिले हैं। इस संस्कृति का उदय लगभग 600 ई. पू. में हुआ था। इसके पश्चात् भारतीय इतिहास के साथ राजस्थान के इतिहास का भी ऐतिहासिक युग आरम्भ हो जाता है।

राजस्थान की प्राचीन सभ्यताएँ

कालीबंगा सभ्यता –

प्राचीन दृषद्वती और सरस्वती नदी घाटी (वर्तमान में घग्घर नदी का क्षेत्र) क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता से भी प्राचीन कालीबंगा की सभ्यता विकसित हुई। राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले में स्थित यह सभ्यता आज से 6 हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन मानी जाती है। इस स्थल का कालींबंगा नाम यहाँ से खुदाई के दौरान प्राप्त काली चूड़ियों के कारण पड़ा है, क्योंकि पंजाबी भाषा में बंगा का अर्थ होता है चूड़ी। सर्वप्रथम 1952 ई. में अमलानन्द घोष ने इसकी खोज की और तत्पश्चात् 1961–62 ई. में बी.बी. लाल, बी.के. थापर

द्वारा यहाँ उत्खनन कार्य करवाया गया। उत्खनन में इस सभ्यता के पाँच स्तर सामने आये हैं, प्रथम दो स्तर तो हड़प्पा सभ्यता से भी प्राचीन है, वहीं तीसरे, चौथे व पाँचवे स्तर की सामग्री हड़प्पा सभ्यता की सामग्री के समान और समकालीन है। इस आधार पर कालीबंगा की सभ्यता को दो भागों में बांटा गया है – (1) प्राक् हड़प्पा सभ्यता (2) हड़प्पा सभ्यता।

कालीबंगा सुव्यवस्थित रूप से बसा हुआ नगर था। मकान बनाने में मिट्टी की ईंटों को धूप में पकाकर प्रयुक्त किया जाता था। उत्खनन से प्राप्त मिट्टी के बर्तन एवं उनके अवशेष पतले और हल्के हैं तथा उनमें सुंदरता व सुडौलता का अभाव है। बर्तनों का रंग लाल है, जिन पर काली एवं सफेद रंग की रेखाएँ खींची गई हैं। यहाँ से जुते हुए खेत के साक्ष्य मिलते हैं, ऐसा अनुमान है कि लोग एक ही खेत में दो फसलें उगाते थे। कालीबंगा से मिले कब्रिस्तान से यहाँ के निवासियों की शवाधान पद्धतियों की जानकारी मिलती है, साथ ही एक बच्चे के कंकाल की खोपड़ी में छः छिद्र मिले हैं, जिसे मस्तिष्क शोध बीमारी के इलाज का प्रमाण माना जाता है। यहाँ से प्राप्त खिलौना बैलगाड़ी, हवनकुण्ड, लकड़ी की नाली व बेलनाकार मुहर का हड़प्पा सभ्यता में अपना विशिष्ट स्थान है।

आहड़ सभ्यता –

उदयपुर शहर के पास बहने वाली आहड़ नदी (आयड़ नदी) के तट पर बसे आहड़ के उत्खनन के फलस्वरूप चार हजार वर्ष पुरानी पाषाण धातु युगीन सभ्यता के अवशेष सामने आए। यह सभ्यता एक टीले के नीचे दबी हुई प्राप्त हुई थी जिसे धूलकोट (धूल यानि मिट्टी का टीला) कहते हैं। सर्वप्रथम 1953 में यहाँ अक्षयकीर्ति व्यास एवं उसके बाद रतन चन्द्र अग्रवाल एवं एच.डी. साँकलियां के निर्देशन में उत्खनन कार्य करवाया गया।

इस सभ्यता के लोग मकान बनाने में धूप में सुखाई गई ईटों एवं पत्थरों का प्रयोग करते थे। आहड़ के लोग अपने मृतकों को गहनों व आभूषणों के साथ दफनाते थे, जो इनके मृत्यु के बाद भी जीवन की अवधारणा का समर्थक होने का प्रमाण है। उत्खनन में मिट्टी के बर्तन सर्वाधिक मिले हैं, जो आहड़ को लाल–काले मिट्टी के बर्तन वाली संस्कृति का प्रमुख केन्द्र सिद्ध करते हैं। आहड़ का दूसरा नाम ताम्रवती नगरी भी मिलता है जो यहाँ ताँबे के औजारों एवं उपकरणों के अत्यधिक प्रयोग के कारण रखा गया होगा। उत्खनन से प्राप्त ठप्पों से यहाँ रंगाई–छपाई व्यवसाय के उन्नत होने का अनुमान भी लगाया जाता है।

गिलूण्ड सभ्यता –

राजसमन्द जिले में स्थित गिलूण्ड कस्बे में बनास नदी के तट पर दो टीलों के उत्खनन के फलस्वरूप आहड़ संस्कृति से जुड़ी यह सभ्यता प्रकाश में आई, जिसे बनास संस्कृति के नाम से भी पुकारा जाता है। 1957–58 ई. में बी.बी. लाल के निर्देशन में यहाँ उत्खनन किया गया। तत्पश्चात् 1998 से 2003 ई. के मध्य पूना के डॉ. वी.एस. शिन्दे एवं पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) के प्रो. ग्रेगरी पोशल के निर्देशन में यहाँ उत्खनन किया गया। उत्खनन से ताम्रयुगीन सभ्यता के अवशेष मिले हैं, जिसका समय 1900–1700 ई.पू. निर्धारित किया गया है।

गिलूण्ड से पाँच प्रकार के मिट्टी के बर्तन मिले हैं– सादे, काले, पालिशदार, भूरे, लाल और काले चित्रित मृदभांड। उत्खनन में मिट्टी के खिलौने, पत्थर की गोलियाँ एवं हाथी दाँत की चूडियों के अवशेष मिले हैं। आहड़ में पक्की ईटों (आग में पकाई हुई ईंटे) का उपयोग नहीं हुआ है, जबकि गिलूण्ड में इनका प्रचुर उपयोग होता था।

बागोर सभ्यता –

भीलवाड़ा जिले में स्थित बागोर में कोठारी नदी तट पर डॉ. वी. एन. मिश्र के निर्देशन में 1967 से 1970 ई. तक उत्खनन कार्य किया गया। उत्खनन के दौरान यहाँ प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता के

अवशेष प्राप्त हुए हैं जो चार से पाँच हजार ईसा पूर्व के माने जाते हैं। यहाँ से बड़ी संख्या में लघु पाषाण उपकरण मिले हैं, जो इस सभ्यता के निवासियों के आखेटक होने को प्रमाणित करते हैं।

बागोर से तांबे के उपकरण प्राप्त हुए हैं, जिनमें छेद वाली सुई सबसे महत्वपूर्ण है। यहाँ से कृषि व पशुपालन के प्राचीनतम साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। बागोर मध्य पाषाण कालीन सभ्यता का स्थल और लघु पाषाण उपकरण का प्रमुख केन्द्र था।

गणेश्वर सभ्यता –

गणेश्वर (नीम का थाना, सीकर) कांतली नदी के उद्गम पर स्थित ताम्रयुगीन संस्कृति का महत्त्वपूर्ण स्थल है। रतनचन्द्र अग्रवाल के निर्देशन में हुए उत्खनन से यहाँ 2800 ईसा पूर्व की सभ्यता के अवशेष मिले हैं। गणेश्वर से अत्यधिक मात्रा में तांबे के आयुध व उपकरण मिले हैं जो इसे ताम्रयुगीन सभ्यताओं में प्राचीनतम सिद्ध करती हैं। यहाँ से प्राप्त तांबे के उपकरणों व पात्रों में 99 प्रतिशत तांबा है, जो इस क्षेत्र में तांबे की प्रचुर प्राप्ति का प्रमाण है। यहाँ से जो मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए है, उन्हें कृपषवर्णी मृदपात्र कहते है, यह बर्तन काले व नीले रंग से सजाये हुऐ हैं। गणेश्वर भारत की ताम्र सभ्यताओं की जननी माना जाता है। यहाँ से तांबा हड़प्पा व मोहनजोदड़ो को भी भेजा जाता था।

अन्य महत्त्वपूर्ण प्राचीन सभ्यताएं

भीनमाल (जालोर) की सभ्यता भी एक महत्त्वपूर्ण सभ्यता है, जिसका उत्खनन आर.सी. अग्रवाल ने करवाया था। यहाँ से एक रोमन ऐम्फोरा (सुरापात्र) व एक यूनानी सुराही मिली है, जो इसके विदेशी व्यापार का केन्द्र होने की पुष्टि करता है। भीनमाल का प्राचीन नाम श्रीमाल था।

इसी प्रकार ईसवाल (उदयपुर) से प्राक् ऐतिहासिक कालीन सभ्यता के प्रमाण मिले हैं। यहाँ से समृद्ध लौह उद्योग के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।

प्राचीन मत्स्य जनपद में स्थित बैराठ (जयपुर) की बीजक पहाड़ी, भीम की डूंगरी व महादेव जी की डूंगरी से हड़प्पा सभ्यता व मौर्यकाल के अवशेष प्राप्त हुए। दयाराम साहनी, नील रत्न बनर्जी, कैलाशनाथ दीक्षित जैसे विद्वान इसके उत्खनन से जुड़े हुए थे। बैराठ से एक गोल मंदिर व अशोक के स्तम्भ के अवशेष प्राप्त हुए हैं। बैराठ के समीप अशोक का भाब्रू अभिलेख प्राप्त हुआ है, जो अशोक के बौद्ध धर्म का अनुयायी होने का सबसे पुख्ता प्रमाण माना जाता है।

बालाथल (उदयपुर) में प्रो. वी.एन. मिश्र के निर्देशन में हुए उत्खनन से एक ताम्र पाषाणकालीन सभ्यता प्रकाश में आई। इस सभ्यता का सम्पर्क हड़प्पा सभ्यता से होने का पुख्ता प्रमाण प्राप्त होता है।

इन महत्त्वपूर्ण सभ्यताओं के अतिरिक्त हमें रंगमहल (हनुमानगढ़), ओझियाना (भीलवाड़ा), नगरी (चित्तौड़) बरोर (गंगानगर), तिलवाड़ा (बाड़मेर), जोधपुरा (जयपुर), सुनारी (झुंझुनूं), नोह (भरतपुर), नगर (टोंक) आदि प्राचीन सभ्यताओं के अवशेष भी राजस्थान में प्राप्त हुए हैं।

राजस्थान में आर्य संस्कृति का प्रसार – हड़प्पा सभ्यता के पतन (1800 ई.पू. के आस–पास) के बाद भारतीय इतिहास में वैदिक सभ्यता का समय प्रारम्भ होता है। इस सभ्यता के बारे में जानने का प्रमुख स्रोत चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद) हैं, इसलिए इसे वैदिक सभ्यता कहा गया है। राजस्थान में इस सभ्यता के अवशेष अनूपगढ़, तरखान वाला डेरा व चक–64 से मिले हैं।

महाकाव्य काल में राजस्थान में आर्यों की अनेक बस्तियों के उल्लेख मिलते हैं। रामायण से ज्ञात होता है कि राम–रावण युद्ध के समय जब दक्षिणी सागर ने अपने ऊपर सेतु बनवाना स्वीकार नहीं किया तो भगवान राम ने उसे भयभीत करने के लिये खींचा हुआ अपना अमोघअस्त्र राजस्थान की ओर ही फेंका था, जिससे यहाँ समुद्र के स्थान पर मरूस्थल हो गया। यद्यपि आज वैज्ञानिक युग में इस कथा को स्वीकार

नहीं किया जा सकता, किंतु रामायण के रचयिता राजस्थान के भू–भाग से परिचित थे, यह तो प्रमाणित हो ही जाता है।

महाभारत में भी राजस्थान के आर्यों का पर्याप्त उल्लेख हुआ है। महाभारत के अनुसार राजस्थान का जांगलदेश (बीकानेर) कौरव–पाण्डव राज्य के अधीन था और मत्स्य राज्य उनका मित्र या अधीनस्थ राज्य था। कहा जाता है कि पाण्डवों ने अपने अज्ञातवास का एक वर्ष भेष बदल कर मत्स्य देश के शासक विराट के दरबार में ही व्यतीत किया था। महाभारत युद्ध में विराट अपनी सेना सहित पाण्डवों की ओर से लड़ता हुआ मारा गया था।

भारतीय इतिहास की भाँति महाभारत के युद्ध के पश्चात् से महात्मा बुद्ध के समय तक का राजस्थान का इतिहास भी अंधकारमय है क्योंकि इस समय के बारे में जानने के पर्याप्त पुरातात्विक व लिखित साक्ष्य प्राप्त नहीं होते हैं। किन्तु बुद्ध के समय से भारतीय इतिहास के ऐतिहासिक युग के आरम्भ होने के साथ ही राजस्थान के इतिहास के सम्बन्ध में भी पहले की अपेक्षा कुछ अधिक स्पष्ट और प्रामाणिक जानकारी मिलने लगती है। बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर विद्वानों का मत है कि छठी शताब्दी ई. पू. में भारतीय राजनीति के रंगमंच पर दो प्रवृत्तियां विशेष रूप दिखाई देती हैं– प्रथम, जनपदों का उदय और द्वितीय, साम्राज्य विस्तार हेतु जनपदों के मध्य संघर्ष।

राजस्थान के जनपद

आर्यों के प्रसार के अन्तर्गत और उसके पश्चात् भारत के अन्य भागों की भाँति राजस्थान में भी अनेक जनपदों का उदय, विकास और पतन हुआ। बौद्ध साहित्य (बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तर निकाय से हमें 16 महाजनपदों की सूची प्राप्त होती हैं) में जिन 16 महाजनपदों का उल्लेख हुआ हैं उनमें से मत्स्य जनपद तो राजस्थान में ही स्थित था और राजस्थान के अनेक भाग कुरु, शूरसेन और अवन्ति महाजनपदों के अन्तर्गत थे। इसके अतिरिक्त चित्तौड़ के आस–पास का क्षेत्र शिवि जनपद कहलाता था। 327 ई. पू. में सिकन्दर के आक्रमणों के कारण अपनी सुरक्षा और अस्तित्व की रक्षा के लिये पश्चिमोत्तर सीमा से कुछ कबीले – मालव, यौधेय और आर्जुनायन राजस्थान में आकर बस गये।

मत्स्य जनपद : आर्य 'जन' के रूप में मत्स्य जाति का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद में हुआ है जो इसकी प्राचीनता का प्रतीक है। शतपथ ब्राह्मण और कौषीतकी उपनिषद् में भी मत्स्य जन का उल्लेख मिलता है। महाभारत में भी मत्स्य जनपद की गणना भारत के प्रमुख जनपदों में की गई है। अनुमान है कि दक्षिण में इसका विस्तार चम्बल की पहाड़ियों तक और पश्चिम में पंजाब में सरस्वती नदी के जंगलों तक था। इस प्रदेश में आधुनिक जयपुर, अलवर, धौलपुर, करौली व भरतपुर के कुछ भाग सम्मिलित थे। महाभारत काल में मत्स्य जनपद का शासक विराट था जिसने जयपुर से 85 किलोमीटर दूर विराट नगर (बैराठ) बसाकर उसे मत्स्य जनपद की राजधानी बनाया। विराट की पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ हुआ था। इन्हीं का पुत्र परीक्षित कालान्तर में पाण्डवों के राज्य का उत्तराधिकारी बना।

महाभारत काल के पश्चात् मत्स्य जनपद के इतिहास के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं मिलती। किन्तु डॉ. गोपीनाथ शर्मा का मत है कि महाभारत के बाद कुरु और यादव जनपद निर्बल हो गये। इन शक्तिशाली जनपदों की निर्बलता का लाभ उठाकर मत्स्य राज्य शक्तिशाली हो गया और उसकी राजधानी विराटनगर की समृद्धि में वृद्धि हुई। मत्स्य जनपद के निकट आधुनिक अलवर के कुछ भागों में शाल्व जाति रहती थी। अस्पष्ट सीमा को लेकर इन दोनों में प्रायः संघर्ष होता रहता था। शाल्वों की भाँति चेदि जनपद भी मत्स्य जनपद का पड़ौसी था। चूंकि दो पड़ौसी राजनीतिक शक्तियों में प्रायः शत्रुता रहती है, अतः चेदि और मत्स्य जनपद में भी संघर्ष चलता रहता था। एक अवसर पर चेदि राज्य ने पूर्ण शक्ति के साथ मत्स्य राज्य पर आक्रमण कर मत्स्य जनपद को चेदि जनपद में मिला लिया। अनुमान है कि मत्स्य जनपद अधिक समय तक चेदि जनपद के अधीन नहीं रहा और कुछ समय बाद ही उसने अपनी स्वतंत्रता पुनः प्राप्त कर ली। कुछ समय बाद ही मत्स्य जनपद मगध की साम्राज्यवादी नीति का शिकार हो गया। मगध के सम्राटों ने भारत के अन्य जनपदों की भाँति मत्स्य जनपद को भी जीतकर मगध साम्राज्य में

शामिल कर लिया। मौर्यों के शासनकाल में मत्स्य जनपद मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत था। मत्स्य जनपद की राजधानी विराटनगर (बैराठ) से प्राप्त अशोक का शिलालेख और अन्य मौर्ययुगीन अवशेष इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

राजपूतों की उत्पत्ति –

हर्षवर्धन की मृत्यु (647 ई.) के बाद भारत की राजनीतिक एकता जो गुप्तों के समय स्थापित हुई थी, पुनः समाप्त होने लगी। उत्तर भारत में अनेक छोटे–छोटे राज्यों की स्थापना हुई। ये राज्य आपस में संघर्षरत थे। इन संघर्षों के परिणामस्वरूप जो नये राजवंश उभरे, वे राजपूत राजवंश कहलाते हैं। इन नवीन राजवंशों का महत्त्व इसी तथ्य से पुष्ट होता है कि भारत का पूर्व–मध्यकालीन इतिहास इन राजपूत राजवंशों का इतिहास ही है, इसलिये इस काल को राजपूत–काल कहा जाता है।

प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है कि "वे (राजपूत) हर्ष की मृत्यु के बाद से उत्तरी भारत पर मुसलमानों के आधिपत्य तक इतने प्रभावशाली हो गये थे कि सातवीं शताब्दी के मध्य से 12वीं शताब्दी की समाप्ति तक के समय को राजपूत–युग कहा जा सकता है।"

राजपूत कौन थे? यह प्रश्न आज भी उलझा हुआ है। विद्वानों ने इस विषय में अनेक मत प्रतिपादित किये हैं, किंतु कोई भी मत ऐसा नहीं है, जो पूरी तरह सर्वमान्य हो। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि "राजपूत शब्द का प्रयोग नया नहीं हैं। प्राचीनकाल के ग्रन्थों में इसका व्यापक प्रयोग मिलता है। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र', कालिदास के नाटकों व बाणभट्ट के 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' में इस शब्द का प्रयोग किया गया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी जो हर्षवर्धन के समय आया था, राजाओं को कहीं क्षत्रिय और कहीं राजपूत लिखा है।" डा. ओझा द्वारा सुझाया गया, यह मत सर्वमान्य नहीं है। राजपूत शब्द का प्रयोग एक जाति के अर्थ में मुसलमानों के आगमन से पूर्व प्राप्त नहीं हुआ है, यद्यपि शासक वर्ग यानी क्षत्रियों के लिए 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग अवश्य किया जाता था। आगे की पंक्तियों में हम इस संबंध में महत्त्वपूर्ण विद्वानों के मतों का अध्ययन करेंगे, उनके मत व उस पर अन्य विद्वानों की टिप्पणियों को भी हम जानेंगे।

वैदिक आर्यों की संतान –

डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा तथा सी.वी. वैद्य राजपूतों को भारतीय आर्यों के क्षत्रिय वर्ण (राजन्य वर्ग) की सन्तान मानते हैं। उनके कथनानुसार राजपूत प्राचीन क्षत्रियों की तरह अश्व तथा अस्त्र की पूजा करते हैं। प्राचीन आर्यों की भाँति यज्ञ और बलि में भी उनका विश्वास रहा है। उनके सुडौल शारीरिक गठन, लम्बी नाक और लम्बे सिर से भी यह प्रमाणित होता है कि वे आर्यों की सन्तान हैं।

अग्निकुण्ड से उत्पन्न –

चन्दबरदायी (अजमेर के शासक पृथ्वीराज–तृतीय का दरबारी विद्वान) ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ पृथ्वीराज रासो में राजपूतों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से बताई है। उसने लिखा है कि आबू पर्वत पर निवास करने वाले विश्वामित्र, गौतम, अगस्त्य तथा अन्य ऋषि धार्मिक अनुष्ठान करते थे। इन अनुष्ठानों को राक्षस माँस, हड्डी और मल–मूत्र डालकर अपवित्र कर देते थे। वशिष्ठ मुनि ने इनसे निपटने हेतु यज्ञ कुण्ड से तीन योद्धा उत्पन्न किये, जो परमार, चालुक्य और प्रतिहार कहलाए। किन्तु जब ये तीनों भी रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध हुए तो वशिष्ठ ने चौथा योद्धा उत्पन्न किया जो प्रथम तीन से ज्यादा ताकतवर और हथियार से सुसज्जित था, जिसका नाम चौहान रखा गया। चन्दबरदाई के अनुसार इस तरह राजपूतों की उत्पत्ति मुनि वशिष्ठ द्वारा अग्निकुण्ड (यज्ञ कुण्ड) से की गई।

यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में इस कथा को स्वीकार नहीं किया जा सकता, किंतु इस कथा में अंतर्निहित संकेतों को विद्वानों ने समझने का प्रयास किया है। विद्वानों के अनुसार संभवतः प्राचीनकाल के क्षत्रिय जो बौद्ध बन गये थे या प्राचीन आदिवासी भील, मीणा आदि या विदेशी आक्रमणकारी शक्तियों –

शक, हूण, यूची आदि की यज्ञ (अग्नि) द्वारा शुद्धि करके क्षत्रिय वर्ण में शामिल किया गया हो और यह कथा इसी घटना की साहित्यिक प्रस्तुति हो।

ब्राह्मणों से उत्पत्ति का सिद्धांत

सर्वप्रथम डॉ. डी.आर. भण्डारकर ने गुहिल राजपूतों की उत्पत्ति नागर ब्राह्मणों से बतलाई। राजपूतों के ब्राह्मणवंशी होने के साक्ष्य के रूप में डॉ. भण्डारकर बिजौलिया शिलालेख का उल्लेख करते हैं, जिसमें वासुदेव चौहान के उत्तराधिकारी सामंत को वत्स गोत्रीय ब्राह्मण बताया गया है। इसके अतिरिक्त उनके अनुसार राजशेखर ब्राह्मण का विवाह अवंति सुंदरी के साथ होना चौहानों का ब्राह्मण वंश से उत्पत्ति का अकाट्य प्रमाण है। डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने भी मेवाड़ के गुहिलोतों को नागर जाति के ब्राह्मण गुहेदत्त का वंशज बताया है। मेवाड़ के महाराणा कुंभा ने भी जयदेव के गीत गोविन्द की टीका में यह स्वीकार किया कि गुहिलोत, नागर ब्राह्मण गुहेदत्त की सन्तान हैं। किन्तु कुछ अन्य इतिहासकार (खासकर डॉ. दशरथ शर्मा) इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार कई बार राजपूत अपने पुरोहित का गोत्र अपना लेते हैं, इस कारण यह भ्रम हो जाता है, कि राजपूत ब्राह्मण थे। डॉ. दशरथ शर्मा इस मत का तर्क–सहित खण्डन करते हैं।

विदेशियों की सन्तान –

राजस्थान के इतिहास–लेखक जेम्स टॉड ने लिखा कि, "राजपूत शक अथवा सीथियन जाति के वंशज हैं।" टॉड ने अग्निकुण्ड की कहानी को स्वीकार करते हुए इसी आधार पर राजपूतों को विदेशी जाति का प्रमाणित करने का प्रयास किया है। उनका मत है कि यह विदेशी जातियाँ छठी शताब्दी के लगभग आक्रमणकारी के रूप में भारत आयीं और इन्हीं विदेशी विजेताओं को, जब वे शासक बन बैठे तो उन्हें अग्नि संस्कार द्वारा पवित्र कर वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत क्षत्रिय वर्ण में ले लिया। टॉड ने राजपूतों को शक व सीथियन प्रमाणित करने के लिए तर्क दिया है कि राजपूतों के रीति–रिवाज शक, सीथियन और हूणों से मिलते हैं, जैसे– अश्वपूजा, अश्वमेध, अस्त्रपूजा, अस्त्र–शिक्षा आदि अतः दोनों जातियाँ एक ही हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार वी.ए. स्मिथ ने लिखा है कि राजपूत जाति आठवीं या नवीं शताब्दी में अचानक प्रकट हुई थी और स्मिथ ने राजपूतों को हूणों की संतान बताया है।

इन मतों को स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रथम तो राजपूतों ने स्वयं को कभी विदेशी नहीं बताया है। इसके विपरीत वे अपनी उत्पत्ति सूर्य व चन्द्र से बताते हैं। राजपूतों के रीति–रिवाजों की शक या सीथियन के रीति–रिवाजों से साम्यता स्थापित करना भी अनुचित है, क्योंकि उनके रीति–रिवाज शक–कुषाणों के आने के पूर्व भी भारत में प्रचलित थे। सूर्य की पूजा भारत में वैदिक काल से ही प्रचलित थी और अश्वमेध यज्ञ भी यहाँ पहले से ही ज्ञात था, जैसा कि महाकाव्यों के साक्ष्य से प्रमाणित होता है।

उपर्युक्त समस्त विवरण से स्पष्ट है कि राजपूतों की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों के बीच मतभेद हैं। ऐसी परिस्थिति में अधिकांश विद्वान राजपूतों को भारतीय आर्यों के वंशज स्वीकार करते हैं, जिसमें विदेशी रक्त भी सम्मिलित है। यह भी स्थापित सत्य हैं, कि जो भी विदेशी जातियाँ भारत में आयीं और स्थायी रूप से यहीं निवास करने लगीं, उन्होंने भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपना लिया तथा हिन्दू समाज ने उन्हें स्वयं में समाहित कर लिया। डॉ. कानूनगो ने ठीक ही लिखा है कि, "अग्निकुण्ड की कहानी इस प्रगति के युग में नहीं चल सकती, उनकी सूर्य अथवा चन्द्र से उत्पत्ति एक काल्पनिक सत्य हो सकता है। राजपूत चाहे किसी भी रूप में जन्मे हों लेकिन यह सत्य है कि इतिहास में उन्होंने महाकाव्य–काल के क्षत्रियों की परम्पराओं को बनाये रखा है।"

राजस्थान के प्रमुख राजपूत वंशों का परिचय

गुहिल वंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक –

उदयपुर, राजसमंद, चित्तौड़गढ़, प्रतापगढ़ तथा इनके आस–पास का क्षेत्र मेवाड़ कहलाता था। गुहिल वंश ने मुख्यतः मेवाड़ में शासन किया। इस वंश का नामकरण इस वंश के प्रतापी शासक 'गुहिल' के

नाम से हुआ। गुहिल वंश की उत्पत्ति और मूल स्थान के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं। अबुल फजल इन्हें ईरान के शासक नौशेखाँ से संबंधित करता है, तो कर्नल टॉड इन्हें वल्लभी के शासकों से संबंधित मानता है, वहीं नैणसी व गोपीनाथ शर्मा इनके ब्राह्मण होने का मत प्रतिपादित करते हैं। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का मानना है कि 566 ई. के लगभग गुहिल ने अपना शासन स्थापित किया। गुहिल के बाद मेवाड़ का प्रतापी शासक बप्पा हुआ।

बप्पा रावल (734–753 ई.) – 'राज प्रशस्ति' के अनुसार बप्पा ने 734 ई. में चित्तौड़ के शासक मानमोरी को परास्त कर चित्तौड़ पर अधिकार किया। बप्पा की राजधानी 'नागदा' थी। बप्पा ने कैलाशपुरी में एकलिंगजी (लकुलीश) मंदिर का निर्माण करवाया। एकलिंगजी गुहिल वंश के कुलदेवता थे। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार, बप्पा का वास्तविक नाम कालभोज था। बप्पा कालभोज की उपाधि थी। वीर विनोद के रचनाकार कविराज श्यामलदास ने लिखा है कि बप्पा किसी राजा का नाम नहीं अपितु खिताब था। ऐसी मान्यता है कि बप्पा चित्तौड़ के शासक मानमोरी के यहाँ सेवा में था। जब चित्तौड़ पर विदेशी सेना का हमला हुआ, तो उनसे मुकाबले की चुनौती बप्पा ने स्वीकार की और उन्हें सिंध तक खदेड़ दिया। इसीलिए इतिहासकार सी.वी. वैद्य उसकी तुलना चार्ल्स मार्टेल (फ्रांसिसी सेनापति, जिसने यूरोप में सर्वप्रथम मुसलमानों को परास्त किया था।) से करते हैं।

जैत्रसिंह (1213–1253 ई.) – गुहिल के ही एक वंशज जैत्रसिंह ने परमारों से चित्तौड़ छीनकर उसे अपनी राजधानी बनाया व 1227 ई. में 'भूताला के युद्ध' में दिल्ली के गुलाम वंश के सुल्तान इल्तुतमिश की सेना को परास्त किया, जिसका वर्णन जयसिंह सूरी के ग्रंथ हम्मीर मदमर्दन में मिलता है। इस ग्रंथ में इल्तुतमिश को हम्मीर कहा गया है। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने जैत्रसिंह की प्रशंसा करते हुए लिखा है– ''दिल्ली के गुलाम वंश के सुल्तानों के समय में मेवाड़ के राजाओं में सबसे प्रतापी और बलवान राजा जैत्रसिंह ही हुआ, जिसकी वीरता की प्रशंसा उसके विरोधियों ने भी की है।''

रतनसिंह (1302–1303 ई.) – रावल रतनसिंह को 1303 ई. में दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण का सामना करना पड़ा, जिसका कारण अलाउद्दीन की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा व चित्तौड़ की सैनिक एवं व्यापारिक उपयोगिता थी। 1540 ई. में मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा लिखित पद्मावत में अलाउद्दीन खिलजी के चित्तौड़ आक्रमण का कारण रावल रतनसिंह की पत्नी पद्मिनी को प्राप्त करना बतलाया गया है। डॉ. दशरथ शर्मा इस मत को मान्यता प्रदान करते हैं। अलाउद्दीन की सेना से लड़ते हुए रतनसिंह व उसके सेनापति गोरा और बादल वीरगति को प्राप्त हुए तथा रानी पद्मिनी ने 1600 महिलाओं के साथ जौहर कर लिया। इस युद्ध में अलाउद्दीन खिलजी का समकालीन इतिहासकार अमीर खुसरो भी सम्मिलित हुआ था, उसने अपने ग्रंथ खजाईन–उल–फुतुह में इस आक्रमण का वर्णन किया है। अलाउद्दीन ने अपने पुत्र खिज्रखाँ को चित्तौड़ का प्रशासक नियुक्त कर चित्तौड़ का नाम खिज्राबाद कर दिया। रतनसिंह मेवाड़ के गुहिल वंश की रावल शाखा का अंतिम शासक था।

राणा हम्मीर (1326–1364 ई.) – सिसोदा ठिकाने के जागीरदार हम्मीर ने 1326 ई. में चित्तौड़ पर अधिकार कर गुहिल वंश की पुनःस्थापना की। सिसोदा का जागीरदार होने से उसे सिसोदिया कहा गया। हम्मीर के दादा लक्ष्मणसिंह अपने पुत्रों के साथ अलाउद्दीन खिलजी के विरूद्ध लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए थे। उसके बाद मेवाड़ के सभी शासक सिसोदिया कहलाते हैं। हम्मीर को 'मेवाड़ के उद्धारक' की संज्ञा दी जाती है। राणा हम्मीर को विषमघाटी पंचानन (विकट आक्रमणों में सिंह के सदृश्य) की संज्ञा राणा कुंभा की कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति में दी गई है। हम्मीर ने सिंगोली (बाँसवाड़ा) के युद्ध में मुहम्मद बिन तुगलक की सेना को परास्त किया था।

महाराणा लाखा (1382–1421 ई.) – 1382 ई. में महाराणा लाखा मेवाड़ का शासक बना। मारवाड़ के रणमल की बहन हंसाबाई का विवाह लाखा के पुत्र चूण्डा के साथ होना था, मगर परिस्थितिवश यह विवाह लाखा के साथ संपन्न हो गया। इस विवाह के साथ यह शर्त थी, कि मेवाड़ का उत्तराधिकारी हंसाबाई का पुत्र ही होगा, जिससे लाखा के योग्य पुत्र चूण्डा को राज्याधिकार से वंचित होना पड़ा। चूण्डा को

राजस्थान का 'भीष्म पितामह' भी कहा जाता है। राणा लाखा के समय में जावर माइन्स से चांदी व सीसा बहुत अधिक मात्रा में निकलने लगा, जिससे आर्थिक समृद्धि बढ़ी। इसी समय एक बनजारे ने पिछोला झील का निर्माण करवाया था।

महाराणा मोकल (1421–1433 ई.) – मोकल महाराणा लाखा व हंसाबाई का पुत्र था। 1421 ई. में जब मोकल शासक बना, तो अल्पायु का होने के कारण चूण्डा ने उसके संरक्षक के रूप में कार्य किया। पर जब चूण्डा को लगा कि मोकल की माता हंसाबाई उस पर संदेह करती है, तो वह मेवाड़ छोड़कर माँडू चला गया। 1433 ई. में मोकल की जिलवाड़ा में चाचा व मेरा ने महपा पँवार के साथ मिलकर हत्या कर दी।

महाराणा कुंभा (1433–1468 ई.) – मोकल के बाद उसका पुत्र महाराणा कुंभा 1433 ई. में मेवाड़ का शासक बना। राठौड़ों का मेवाड़ पर प्रभाव समाप्त कर उसने मेवाड़ी सामंतों का विश्वास अर्जित किया। कुंभा ने चित्तौड़ एवं कुंभलगढ़ को अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया। 1437 ई. में सारंगपुर के युद्ध में मालवा के शासक महमूद खिलजी को परास्त कर बंदी बना लिया। इस विजय के उपलक्ष्य में कुंभा ने कीर्ति स्तम्भ का निर्माण करवाया। नागौर के उत्तराधिकार को लेकर मेवाड़ व गुजरात में युद्ध हुआ, जिसमें गुजरात की पराजय हुई। 1453 ई. में कुंभा ने मारवाड़ से मण्डोर छीन लिया, परंतु बाद में संधि कर अपने पुत्र रायमल का विवाह मारवाड़ की राजकुमारी से कर दिया।

1456 ई. में मालवा के महमूद खिलजी व गुजरात के कतुबुद्दीन के बीच चम्पानेर की संधि हुई। इस संधि में यह तय किया गया कि दोनों शासक मिलकर कुंभा पर आक्रमण करके, उसे हराकर, उसके राज्य को बांट लेंगे। 1457–58 ई. में गुजरात व मालवा के शासकों ने मेवाड़ पर आक्रमण किया। मगर कुंभा की कूटनीति से दोनों शासकों में मतभेद पैदा होने के कारण वे विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सके।

ऐसा माना जाता है कि कुंभा ने 32 दुर्गों का निर्माण करवाया, जिनमें सिरोही, अचलगढ़ एवं कुंभलगढ़ के दुर्ग प्रसिद्ध हैं। कविराज श्यामलदास भी कुंभा को मेवाड़ के 84 में से 32 दुर्गों का निर्माता बताते हैं। कुंभलगढ़ का दुर्ग अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति एवं बनावट के कारण प्रसिद्ध है। इसका शिल्पी मण्डन था। कुंभा ने चित्तौड़ में कुंभस्वामी तथा श्रृंगारचंवरी का मंदिर, एकलिंगजी का विष्णु मंदिर एवं रणकपुर के मंदिर बनवाये, जो अपनी विशालता एवं तक्षणकला के कारण अद्भुत हैं।

कुंभा एक विद्वान एवं विद्यानुरागी शासक था। कान्ह व्यास द्वारा रचित एकलिंग महात्म्य से ज्ञात होता है कि वह वेद, स्मृति, मीमांसा, उपनिषद्, व्याकरण एवं राजनीति में रूचि रखता था। संगीतराज, संगीत मीमांसा व सूड प्रबंध इसके द्वारा रचित ग्रंथ थे। ऐसा माना जाता है कि कुंभा ने चण्डीशतक की व्याख्या, गीत गोविन्द और संगीत रत्नाकार पर टीका लिखी थी। इसके काल में कवि अत्रि और महेश ने कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति की रचना की। तत्कालीन साहित्यिक ग्रंथों और प्रशस्तियों में महाराणा कुंभा को महाराजाधिराज, रावराय, दानगुरु, राजगुरु, परमगुरु, हालगुरु, अभिनवभरताचार्य, हिन्दू सुरताण आदि विरुदों से विभूषित किया गया।

कुंभा निःसंदेह प्रतापी शासक था, किंतु उसका अंतिम समय कष्टमय रहा। अपने जीवन के अंतिम काल में कुंभा को उन्माद रोग हो गया और उसके पुत्र उदा ने 1468 ई. में उसकी हत्या कर दी।

राणा सांगा (1509–1528 ई.) – सांगा (संग्राम सिंह) व उसके तीनों भाई पृथ्वीराज, जयमल व राजसिंह, चारों ही स्वयं को अपने पिता का उत्तराधिकारी मानते थे। इस कारण उनमें संघर्ष होना स्वाभाविक था, पर इस संघर्ष में अंततः सांगा विजयी रहा और मेवाड़ का शासक बना। इतिहास में 'हिन्दूपत' के नाम से प्रसिद्ध महाराणा सांगा 1509 ई. में मेवाड़ का शासक बना। इस समय मालवा पर सुल्तान नासिरूद्दीन शासन कर रहा था। 1511 ई. में सुल्तान की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार का संघर्ष छिड़ गया जिसमें एक राजपूत सरदार मेदिनीराय के सहयोग से महमूद खिलजी द्वितीय को सफलता मिली। इस सफलता से मेदिनीराय का कद बहुत बढ़ गया तथा अब वह एक तरह से मालवा का अप्रत्यक्ष

शासक बन गया। अंततः मालवा के अमीरों ने गुजरात की सहायता से मेदिनीराय को इस स्थिति से हटा दिया। मेदिनीराय राणा सांगा की शरण में चला गया, जिससे मालवा एवं मेवाड़ में युद्ध हुआ। मालवा का सुल्तान महमूद खिलजी–द्वितीय पराजित हुआ और राणा द्वारा बंदी बना लिया गया।

ईडर के उत्तराधिकार का प्रश्न, नागौर पर अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास व मालवा को सहयोग आदि ऐसे मसले थे, जिनको लेकर सांगा व गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर के बीच संघर्ष हुआ, पर अंतिम रूप से सफलता किसी पक्ष को न मिली। 1517 ई. में महाराणा सांगा ने खातौली (वर्तमान में कोटा जिले में) के युद्ध में दिल्ली के सुल्तान इब्राहिम लोदी को परास्त किया। इसके बाद राणा की सेना ने बाड़ी (धौलपुर) के युद्ध में भी इब्राहिम लोदी की सेना को परास्त किया। इससे राणा की प्रतिष्ठा बढ़ गयी और राणा सांगा उत्तर भारत का शक्तिशाली शासक बन गया। 1526 ई. में बाबर ने पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी को परास्त कर आगरा पर अधिकार कर लिया। बाबर ने राणा सांगा पर विश्वासघात का आरोप लगाकर उसके विरुद्ध कूच किया। बाबर के अनुसार राणा सांगा ने उससे वादा किया था, कि जब वह इब्राहीम लोदी पर आक्रमण करेगा, तो सांगा उसकी मदद करेगा, किंतु राणा सांगा ने उसकी कोई मदद नहीं की, मगर इस आरोप की पुष्टि नहीं होती है। चूंकि दोनों ही शासक शक्तिशाली एवं महत्त्वाकांक्षी थे। अतः दोनों के मध्य युद्ध निश्चित था। यद्यपि खानवा के मैदान में सांगा पराजित हुआ था, पर इससे पहले बयाना के युद्ध (फरवरी, 1527 ई.) में उसने बाबर की सेना को पराजित किया था। 17 मार्च, 1527 को खानवा के मैदान में बाबर और राणा सांगा के बीच युद्ध हुआ। तोपखाने एवं तुलुगमा युद्ध पद्धति के कारण बाबर की विजय हुई। राणा सांगा युद्ध में घायल हुआ एवं उसे युद्ध के मैदान से दूर ले जाया गया। जब राणा सांगा ने अपनी पराजय का बदला लिये बिना चित्तौड़ लौटने से इनकार कर दिया तब उसके सामंतों ने जो युद्ध नहीं करना चाहते थे, सांगा को विष दे दिया। जिसके फलस्वरूप 30 जनवरी, 1528 को बसवा (दौसा) में सांगा की मृत्यु हो गई। माण्डलगढ़ में सांगा का समाधि स्थल है।

राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात् राणा रतनसिंह (1528–1531 ई.) व उसके पश्चात् राणा विक्रमादित्य मेवाड़ का शासक बना।

राणा उदयसिंह (1537–1572 ई.) – राजस्थान के इतिहास में अपने महान बलिदान के कारण ख्याति प्राप्त पन्नाधाय ने अपने पुत्र चंदन का बलिदान करके उदयसिंह को बनवीर से बचाया था। उदयसिंह को बचाकर कुंभलगढ़ के किले में रखा गया था। यहीं मालदेव के सहयोग से 1537 ई. में उदयसिंह का राज्याभिषेक हुआ तथा 1540 ई. में मावली (उदयपुर) के युद्ध में मालदेव के सहयोग से बनवीर की हत्या कर मेवाड़ की पैतृक सत्ता उदयसिंह ने प्राप्त की थी। उदयसिंह ने 1559 ई. में उदयपुर नगर बसाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। यहाँ उसने उदयसागर झील तथा मोती मगरी के सुंदर महलों का निर्माण करवाया। अक्टूबर, 1567 में अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। अपने सरदारों की सलाह पर उदयसिंह किले की रक्षा का भार जयमल और फत्ता नामक अपने दो सेनानायकों को सौंपकर पहाड़ियों में चला गया। किले की रक्षा के दौरान जयमल व फत्ता वीर गति को प्राप्त हुए। अकबर ने जयमल–फत्ता की वीरता से मुग्ध होकर आगरा के किले के बाहर उनकी हाथी पर सवार पत्थर की मूर्तियाँ लगवाईं।

महाराणा प्रताप (1572–1597 ई.) – 9 मई 1540 को कुंभलगढ़ में जन्मे प्रताप 1572 ई. में मेवाड़ के शासक बने। महाराणा उदयसिंह ने जगमाल को अपना उत्तराधिकारी बनाया था, मगर सरदारों ने उसे स्वीकार नहीं किया और प्रताप को गद्दी पर बिठा दिया। इस समय दिल्ली पर मुगल बादशाह अकबर का शासन था। प्रताप के सामने दो मार्ग थे या तो वह अकबर की अधीनता स्वीकार कर सुविधापूर्ण जीवन बिताये या अपना स्वतंत्र अस्तित्व और अपने देश की प्रतिष्ठा बनाये रखे। दूसरा विकल्प चुनने की स्थिति में उसे अनेक कष्ट उठाने थे, फिर भी प्रताप ने दूसरे विकल्प 'संघर्ष' को ही चुना। इस संघर्ष की तैयारी में उसने सबसे पहले मेवाड़ को संगठित करने का बीड़ा उठाया। अपने कर्त्तव्य और विचारों से उसने सामन्तों और भीलों का एक गुट बनाया जो सदैव देश की रक्षा के लिए उद्यत रहे। प्रताप ने प्रथम बार इन्हें अपनी सैन्य व्यवस्था में उच्च पद देकर इनके सम्मान को बढ़ाया। मुगलों से बचकर युद्ध का प्रबन्ध करने के लिए

उसने गोगुंदा से अपना निवास स्थान कुंभलगढ़ स्थानांतरित कर लिया। अकबर किसी भी तरह से मेवाड़ को अपने अधीन करना चाहता था। अतः उसने समझौते के प्रयास किये। 1572 ई. से 1576 ई. के मध्य उसने चार शिष्ट मण्डल क्रमशः जलाल खाँ, मानसिंह, भगवानदास एवं टोडरमल के नेतृत्व में भेजे। मगर महाराणा ने संधि करने में किसी प्रकार की रूचि नहीं दिखाई। अतः मेवाड़ को मुगल आक्रमण का सामना करना पड़ा। 1576 ई. के प्रारंभ में अकबर मेवाड़ अभियान की तैयारी हेतु अजमेर पहुँचा और वहीं उसने मानसिंह को मेवाड़ अभियान का नेतृत्व सौंपा।

महाराणा प्रताप

18 जून 1576 ई. (कुछ विद्वान यह तिथि 21 जून भी स्वीकार करते हैं।) को खमनौर के पास मुगल सेना का प्रताप से युद्ध हुआ जो हल्दीघाटी के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। प्रताप की सेना के हरावल (सेना का अग्रिम दस्ता) का नेतृत्व हकीम खाँ सूर कर रहा था जबकि मुगल सेना के हरावल का नेतृत्व जगन्नाथ कच्छवाहा कर रहा था। युद्ध में प्रताप के जीवन को संकट में देखकर झाला बीदा ने प्रताप का मुकुट धारण कर युद्ध किया एवं प्रताप को युद्धभूमि से दूर भेज दिया। इस युद्ध का परिणाम नहीं निकल सका। अकबर का उद्देश्य पूरा नहीं हो सका। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद महाराणा प्रताप ने पहाड़ों में रहते हुए वहीं से मुगलों को परेशान करने के लिए धावे मारना शुरू कर दिया। इस युद्ध को अबुल–फजल ने खमनौर का युद्ध, बदाँयूनी ने गोगुंदा का युद्ध तथा जेम्स टॉड ने हल्दीघाटी का युद्ध कहा था।

क्या आप जानते हैं?

''हल्दीघाटी नाम हल्दी रंगी मिट्टी के कारण नहीं पड़ा। ऐसी मिट्टी यहाँ है भी कहाँ। लाल पीली और काली तीन रंगों वाली मिट्टी है फिर हल्दीघाटी नाम क्यों दिया गया? इसका एकमात्र कारण यह है कि यहाँ हल्दी चढ़ी कई नव विवाहिताएं पुरुष वेश में लड़ मरीं।''

अजूबा भारत : डॉ. महेन्द्र भानावत; पृष्ठ 153

1576 ई. से 1585 ई. तक अकबर ने मेवाड़ पर अधिकार के लिये अनेक सैनिक अभियान किये। शाहबाज खाँ, अर्ब्दुरहीम खानखाना के नेतृत्व में सेनाएँ भेजी गईं, मगर उन्हें ज्यादा सफलता नहीं मिली। इस कालखण्ड में दो महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटित हुईं। 3 अप्रैल 1578 ई. को भीषण संघर्ष के बाद शाहबाज खाँ कुंभलगढ़ दुर्ग पर अधिकार करने में सफल रहा। 1582 ई. में महाराणा प्रताप ने मुगलों के विरुद्ध दिवेर नामक सैनिक चौकी पर आक्रमण किया। महाराणा के पुत्र अमरसिंह ने इस चौकी पर तैनात मुगल सूबेदार सेरिमा सुल्तान खाँ को एक ही वार में परलोक पहुँचा दिया। एक छोटी सी मेवाड़ी सेना की यह बहुत बड़ी सफलता थी, इसी कारण दिवेर को 'मेवाड़ का मेराथन' कहते हैं।

1585 ई. के बाद अकबर मेवाड़ की तरफ कोई अभियान नहीं भेज सका। 1585 से 1597 ई. के बीच प्रताप ने चित्तौड़ एवं माण्डलगढ़ को छोड़कर शेष राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया, चावण्ड को अपनी राजधानी बनाया और राज्य में सुव्यवस्था स्थापित की। 19 जनवरी, 1597 को प्रताप की मृत्यु हो गई। चावण्ड के पास 'बाडोली' नामक गाँव में प्रताप का अंतिम संस्कार किया गया। प्रताप के संबंध में कर्नल टॉड लिखते हैं कि आलप्स पर्वत के समान अरावली में कोई भी ऐसी घाटी नहीं, जो प्रताप के किसी न किसी वीर कार्य, उज्ज्वल विजय या उससे अधिक कीर्तियुक्त पराजय से पवित्र न हुई हो। हल्दीघाटी मेवाड़ की थर्मोपल्ली और दिवेर मेवाड़ का 'मेराथन' है।

राणा अमरसिंह (1597–1620 ई.) – अमरसिंह 1597 ई. में मेवाड़ का शासक बना। शासक बनने के उपरांत उसे मुगल आक्रमणों का सामना करना पड़ा। 1613 ई. में जहाँगीर स्वयं अजमेर पहुँचा और शाहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) को मेवाड़ अभियान का नेतृत्व सौंपा। उसने मेवाड़ में लूटमार एवं आगजनी द्वारा संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी। मेवाड़ के सामंत युद्धों से ऊब गये थे एवं उनकी जागीरें भी वीरान हो गई थी। अतः उन्होंने कुँवर कर्णसिंह को अपने पक्ष में कर राणा पर मुगलों से संधि करने का दबाव डाला। सरदारों के दबाव के कारण अमरसिंह को झुकना पड़ा और मुगलों से संधि की स्वीकृति देनी पड़ी। जनवरी, 1615 में मेवाड़–मुगल संधि हुई। चित्तौड़ पुनः मेवाड़ को लौटा दिया गया, मगर उसकी मरम्मत नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार विगत 90 वर्षों से चले आ रहे मेवाड़–मुगल संघर्ष का अंत हुआ। राणा अमरसिंह अपने इस कार्य से स्वयं खुश न था और उसने स्वयं को राजकार्य से विरक्त कर लिया। जहाँगीर के जीवन की यह एक बड़ी सफलता मानी जाती है।

महाराणा राजसिंह (1652–80 ई.) – राजसिंह ने शासक बनते ही चित्तौड़ की मरम्मत के कार्य को पूरा करने का निश्चय किया। लेकिन मुगल सम्राट ने इसे 1615 ई. की मेवाड़–मुगल संधि की शर्तों के प्रतिकूल मानते हुए चित्तौड़ दुर्ग को ढहाने के लिए तीस हजार सेना के साथ सादुल्ला खाँ को भेजा। राजसिंह ने मुगलों से संघर्ष करना उचित न समझकर अपनी सेना को वहाँ से हटा लिया। मुगल सेना कंगूरे एवं बुर्ज गिराकर लौट गयी। 1658 ई. में मुगल शाहजादों में उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ा, मगर महाराणा किसी भी पक्ष का समर्थन नहीं करना चाहता था। अतः महाराणा टालमटोल करता रहा। जब औरंगजेब दिल्ली का शासक बना, तो प्रारम्भ में तो उसके संबंध राजसिंह से अच्छे रहे। औरंगजेब ने उसे 6000 जात एवं सवार का मनसब भी प्रदान किया, किंतु किशनगढ़ की राजकुमारी चारूमति, जिसका विवाह औरंगजेब से होने वाला था, से विवाह करके राजसिंह ने 1669 ई. में औरंगजेब को अप्रसन्न कर दिया। इसके बाद 1679 ई. में औरंगजेब द्वारा जजिया कर लगाने का राजसिंह ने विरोध किया। मुगल–मारवाड़ संघर्ष छिड़ने पर महाराणा राजसिंह ने राठौड़ों का साथ दिया। 1680 ई. में राजसिंह की मृत्यु हो गयी।

अकाल प्रबंधन के उद्देश्य से राजसिंह ने गोमती नदी के पानी को रोककर राजसमंद झील का निर्माण करवाया तथा इस झील के उत्तरी किनारे पर नौ चौकी नामक स्थान पर 'राज प्रशस्ति' नामक शिलालेख लगवाया। संस्कृत भाषा में लिखित राजप्रशस्ति शिलालेख की रचना रणछोड़ भट्ट द्वारा की गई थी। यह प्रशस्ति 25 काले संगमरमर की शिलाओं पर खुदी हुई है। इसे संसार का सबसे बड़ा शिलालेख माना जाता है।

मारवाड़ का राठौड़ वंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक

जिस प्रकार दक्षिणी–पश्चिमी राजस्थान के गुहिलों का शासन मेवाड़ और वागड़ प्रांत में स्थापित हुआ, उसी प्रकार राजस्थान के उत्तरी तथा पश्चिमी भागों में राठौड़ों के राज्य भी स्थापित हुए।

राठौड़ की उत्पत्ति का विषय विवादास्पद है। विभिन्न ताम्रपत्रों, शिलालेखों और प्राचीन पुस्तकों में राठौड़ वंश की उत्पत्ति को लेकर भिन्न–भिन्न मत प्रतिपादित किये गये हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि राठौड़ हिरण्यकश्यप की सन्तान हैं। जोधपुर राज्य की ख्यात में इन्हें राजा विश्वुतमान के पुत्र राजा वृहद्बल से पैदा होना लिखा है। दयालदास ने इन्हें सूर्यवंशीय माना है और इन्हें ब्राह्मण भल्लराव की सन्तान बताया है। नैणसी ने मारवाड़ के राठौड़ो को कन्नौज से आने वाली शाखा बताया है। कर्नल टॉड ने राठौड़ों की वंशावलियों के आधार पर इन्हें सूर्यवंशी माना है।

इस प्रकार राठौड़ों की उत्पत्ति सम्बन्धी मत पर एक राय नहीं है, किंतु सभी विद्वान इन्हें दक्षिण भारत के राष्ट्रकूटों से अवश्य संबंधित मानते हैं। इनमें जोधपुर और बीकानेर के राठौड़ अधिक प्रसिद्ध है। जोधपुर के राठौड़ों का मूलपुरुष (आदि पुरुष) सीहा था, जिसे कन्नौज के गहड़वाल जयचन्द का वंशज माना जाता है। सीहा केवल मारवाड़ के एक छोटे से भाग पाली के उत्तर–पश्चिम में अपना राज्य स्थापित

कर पाया। सीहा ने मारवाड़ में राठौड़ राज्य की स्थापना तो कर दी, मगर उसे व्यवस्थित नहीं कर पाया।

राव चूण्डा (1394–1423 ई.) – अपने साहस और कूटनीति से राव चूण्डा ने मण्डोर पर अधिकार कर लिया। इसने मण्डोर को राठौड़ों की राजधानी बनाया। मण्डोर पर अधिकार के बाद इसने आस–पास के क्षेत्रों खाटू, डीडवाना, सांभर, अजमेर, नाडोल आदि पर भी अधिकार कर लिया। पूंगल के भाटियों द्वारा वह धोखे से 1423 ई. में मारा गया। उसकी पत्नी चाँद कँवर ने 'चाँद बावड़ी' (जोधपुर) का निर्माण करवाया था।

राव रणमल (1427–1438 ई.) – रणमल अपने छोटे भाई कान्हा को मारवाड़ का शासक बनाये जाने से नाराज होकर मेवाड़ चला गया। इसने अपनी बहन हंसा बाई का विवाह राणा लाखा से कर दिया। यह विवाह रणमल ने इसी शर्त पर किया था, कि हंसा बाई का पुत्र ही लाखा का उत्तराधिकारी होगा। अपने भान्जे मोकल के मेवाड़ महाराणा बनने पर मेवाड़ प्रशासन में रणमल का प्रभाव बढ़ गया। रणमल की 1438 ई. में उसकी प्रेमिका भारमली के सहयोग से मेवाड़ी सामन्तों द्वारा हत्या कर दी गई।

राव जोधा (1438–1489 ई.) – राव जोधा मारवाड़ के राव रणमल का पुत्र था। 1438 ई. में चित्तौड़ में रणमल की हत्या होने के बाद उसने जंगलों में रहकर अपनी शक्ति को संगठित किया। 1453 ई. में वह मण्डोर जीतने में सफल रहा। उसने मेवाड़ से सुलह करने के लिए अपनी पुत्री का विवाह मेवाड़ी राजकुमार रायमल से कर दिया। उसने 1459 ई. में जोधपुर नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया। राव जोधा ने नयी राजधानी को सुरक्षित रखने के लिए चिडियाटूँक पहाड़ी पर एक दुर्ग बनाया जिसे मेहरानगढ़ कहते हैं। राव जोधा ने दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी की एक सेना को परास्त करके प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा राव जोधा को जोधपुर का प्रथम प्रतापी शासक मानते हैं।

राव मालदेव (1531–1562 ई.) – राव मालदेव ने खानवा के युद्ध में राणा सांगा की ओर से भाग लिया। यद्यपि खानवा के युद्ध के समय मारवाड़ का शासक इसका पिता राव गांगा था। इसने 1532 ई. में बहादुरशाह के मेवाड़ पर आक्रमण के दौरान राणा विक्रमादित्य की सहायता की। 1536 ई. में राव मालदेव ने जैसलमेर के राव लूणकरण की पुत्री उमादे से विवाह किया, जो इतिहास में 'रूठी रानी' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस घटना का कारण यह था, कि मालदेव का श्वसुर व उमादे का पिता राव लूणकरण मालदेव की हत्या करवाना चाहता था। इसकी सूचना मालदेव की सास ने मालदेव को भिजवा दी, इस घटना के बाद मालदेव व उमादे के संबंध बिगड़ गये। वह रूठकर अजमेर के तारागढ़ में रही व इतिहास में 'रूठी रानी' नाम से प्रसिद्ध हुई। मालदेव ने मेड़ता के वीरमदेव और बीकानेर के राव जैतसी पर आक्रमण कर (1542 ई.) उनके राज्यों पर अधिकार कर लिया। वीरमदेव व राव जैतसी शेरशाह की शरण में चले गये। 1539 व 1540 ई. में शेरशाह के हाथों पराजित होकर हूमायूँ दर–बदर भटक रहा था, तो मालदेव ने हुमायूँ को सहायता का संदेश भेजा, क्योंकि मालदेव जानता था, कि हुमायूँ की पूर्ण पराजय के पश्चात् शेरशाह का अगला शिकार स्वयं मालदेव ही होगा।

1543–44 ई. में मालदेव को शेरशाह सूरी के आक्रमण का सामना करना पड़ा। शेरशाह की धूर्तता ने मालदेव और उसके सेनापतियों के बीच अविश्वास उत्पन्न कर दिया जिससे मालदेव ने मैदान छोड़ दिया। मगर उसके सेनापतियों जैता और कुप्पा ने जनवरी, 1544 में गिरि सुमेल में शेरशाह से युद्ध किया और वीरगति को प्राप्त हुए। उनकी वीरता से प्रभावित होकर शेरशाह को कहना पड़ा ''एक मुठ्ठी बाजरे के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता।''

शेरशाह की मृत्यु (1545 ई.) के बाद मालदेव ने जोधपुर, पोकरण, फलौदी, बाड़मेर, कोटड़ा, जालौर और मेड़ता पर पुनः अधिकार कर लिया। 1562 ई. में मालदेव की मृत्यु हो गई।

राव चन्द्रसेन (1562–1581 ई.) – राव मालदेव ने अपने सबसे बड़े पुत्र राम से अप्रसन्न होकर उसे राज्य से निर्वासित कर दिया। अपने दूसरे पुत्र उदयसिंह से भी मालदेव खुश न था, अतः उसे भी अपना

उत्तराधिकारी नहीं बनाया। अंततः चंद्रसेन मालदेव का उत्तराधिकारी बना, जो उसका तीसरा पुत्र था। चन्द्रसेन को अपने दो बड़े भाइयों राम और उदयसिंह के विरोध का सामना करना पड़ा। 1564 ई. में राम सहायता लेने अकबर की शरण में चला गया। अकबर ने हुसैन कुली खाँ के नेतृत्व में एक सेना भेजकर जोधपुर पर अधिकार (1564 ई.) कर लिया।

1570 ई. में अकबर के नागौर दरबार के दौरान चन्द्रसेन भी जोधपुर प्राप्ति की आशा से नागौर पहुँचा। मगर अकबर का उसके भाइयों राम और उदयसिंह की ओर झुकाव देखकर उसने नागौर छोड़ दिया और संघर्ष का रास्ता चुना। अकबर ने बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का अधिकारी नियुक्त कर चंद्रसेन को मारवाड़ से सहायता मिलने या इस मार्ग से गुजरात में हानि पहुँचाने की सम्भावना समाप्त कर दी।

1565 ई. में जोधपुर को छोड़ने के बाद चन्द्रसेन ने कुछ समय तो भाद्राजूण में रहकर मुगलों की फौजों का मुकाबला किया, परन्तु जब मुगल सेना ने उसे चारों ओर से घेर लिया तो वहाँ से हटकर उसने सिवाना में अपना मोर्चा बनाया। सिवाना का गढ़ और पहाड़ी भाग दुर्गम थे। वहाँ जब चन्द्रसेन का पता न लगा तो मुगल अधिकारियों ने उसके समर्थकों को समाप्त करने का प्रयत्न किया। रावल सुखराज, सूजा तथा देवीदास चन्द्रसेन के साथी थे। मुगल सेनाओं ने इन्हें भी जगह–जगह खूब खदेड़ा। इसके बाद चन्द्रसेन के विरुद्ध सिवाना में मुगल शक्ति लगा दी गयी जिससे तंग आकर वह रामपुरा के पहाड़ों में चला गया। यह जानकर कि मुगलों की छोटी सेना के लिए इतने विस्तृत पहाड़ी प्रदेश को घेरना कठिन था, बादशाह ने सेना में वृद्धि कर दी। फिर भी चन्द्रसेन हाथ न आ सका। सिवाना से निकलकर चन्द्रसेन पीपलोद और वहाँ से काणूजा के पहाड़ों में चला गया और आस–पास लूट–खसोट आरम्भ कर दी। इस नीति से मारवाड़ में लोग अप्रसन्न हो गये। ऐसी स्थिति में उसने मारवाड़ छोड़कर सिरोही और फिर डूंगरपुर और बाँसवाड़ा में शरण लेनी पड़ी। फिर भी मुगल सेना ने उसका पीछा न छोड़ा। इस प्रकार निरन्तर मुगलों से चंद्रसेन संघर्ष करता रहा और 1581 ई. में अपनी मृत्यु तक इसे जारी रखा। विश्वेश्वरनाथ रेऊ ने चन्द्रसेन की तुलना महाराणा प्रताप से की है, जिसे उसी के समान मुगल शक्ति का सामना करना पड़ा और पहाड़ों में भटकने के बाद भी मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की। इसी कारण चंद्रसेन को मारवाड़ का प्रताप भी कहा जाता है।

मोटा राजा उदयसिंह (1583–1595 ई.) – 1581 से 1583 ई. के मध्य मारवाड़ खालसा (सीधे केन्द्र के अधीन) क्षेत्र था। 1583 ई. में अकबर ने उदयसिंह को मुगल अधीनता में जोधपुर का शासक नियुक्त किया। यह चन्द्रसेन का भाई था। उदयसिंह ने 1587 ई. में अपनी पुत्री जोधा बाई (जगत गुसाई) का विवाह जहाँगीर के साथ किया। खुर्रम जहाँगीर की इसी पत्नी से उत्पन्न पुत्र था। इस विवाह के अवसर पर उदयसिंह को 1000 का मनसबदार बनाया गया था।

महाराजा जसवंतसिंह प्रथम (1638–1678 ई.) – जसवंत सिंह का जन्म 1626 ई. में बुरहानपुर में हुआ था। अपने पिता गजसिंह के स्वर्गवास के समय, जसवंत सिंह अपने विवाह हेतु बूंदी में था। गजसिंह की मृत्यु का समाचार प्राप्त होते ही बादशाह शाहजहाँ के द्वारा उसे आगरा पहुँचने का निमन्त्रण भी मिला। वहाँ पहुँचने पर शाही तौर से उसे टीका दिया गया और खिलअत, जड़ाऊ जमधर आदि वस्तुओं से सम्मानित किया गया। इसी अवसर पर उसे राजा का खिताब तथा 4000 जात व सवार का मनसब प्रदान किया गया। चूंकि उसकी आयु उस समय 11 वर्ष की थी, बादशाह ने आसोप ठाकुर राजसिंह कूंपावत को एक हजार जात और चार सौ सवार का मनसब देकर जोधपुर राज्य का मंत्री नियुक्त किया।

1645 ई. में इसे आगरा का प्रबंध सौंपा गया एवं 1648 ई. में कंधार अभियान पर भेजा गया। उत्तराधिकार युद्ध (1657–58 ई.) में उसने औरंगजेब के विरुद्ध धरमत के युद्ध में दारा का साथ दिया, लेकिन कासिम खाँ के विश्वासघात के कारण दारा की पराजय हुई और जसवंत सिंह को जोधपुर लौटना पड़ा।

जसवंत सिंह के जोधपुर पहुँचने पर उसकी 'उदयपुरी रानी' ने किले के द्वार खोलने से इनकार कर दिया और कहलवा भेजा कि राजपूत या तो युद्ध से विजयी लौटते हैं या वहाँ मर मिटते हैं। महाराजा पराजय के बाद नहीं लौट सकते। यह कहकर वह सती होने की तैयारी करने लगी। अंत में रानी की माँ के समझाने एवं जसवंत सिंह द्वारा पराजय का बदला लेने का वचन देने पर दुर्ग के द्वार खोले गए। इस कथा की सत्यता पर संदेह किया जाता है, किंतु इस कथा को श्यामलदास ने मान्यता दी है। 5 जनवरी, 1659 को खजुवा के मैदान में औरंगजेब और जसवंत सिंह के आपसी अविश्वास के कारण वह शाही डेरे को लूटकर जोधपुर रवाना हो गया। बाद में जयसिंह की मध्यस्थता से जसवंत सिंह और मुगल सम्राट औरंगजेब के बीच मनमुटाव कम हो गया। फलतः उसका मनसब पुनः बहाल कर 1659 ई. में उसे गुजरात का सूबेदार बना दिया गया। 1662 ई. में जसवंतसिंह को मराठों के विरुद्ध शाइस्ता खाँ की सहायता करने के लिए दक्षिण भेजा गया। परंतु वहाँ शिवाजी के विरुद्ध कोई खास सफलता इसे नहीं मिली। 1673 ई. में जसवंत सिंह को काबुल भेजा गया। बाद में उसे जमरूद में रहने का आदेश दिया गया और वहीं 28 नवम्बर, 1678 को उसकी मृत्यु हो गई।

जसवंत सिंह विद्वानों का आश्रयदाता था। उसके समय के विद्वानों में सूरत मिश्र, नरहरिदास, नवीन कवि, बनारसीदास आदि प्रसिद्ध हैं। मुँहणोत नैणसी उसका मंत्री था। नैणसी ने नैणसी री ख्यात व मारवाड़ रा परगना री विगत नामक ग्रंथों की रचना की थी।

बीकानेर का राठौड़ वंश एवं इसके वंश के प्रतापी शासक

राव बीका (1465 –1504 ई.) – बीका मारवाड़ के शासक राव जोधा का पुत्र था। अपने पिता के द्वारा व्यंग्य किये जाने पर 1465 ई. में वह जांगल प्रदेश में आ गया। किंवदंती है कि करणी माता की कृपा से उसे नवीन राज्य स्थापित करने में सहायता मिली। एक दूसरी मान्यता के अनुसार जांगल प्रदेश को राव बीका व जाट सरदार नरा ने मिलकर जीता, दोनों के नाम पर इसे बीकानेर कहा गया। भाटी, चौहान, खींचियों, कायमखानी आदि स्थानीय शक्तियों की फूट का लाभ उठाकर उसने अनेक गाँवों पर अधिकार कर लिया। पूंगल के राव शेखा की पुत्री से विवाह कर उसने अपनी स्थिति को मजबूत किया। 1488 ई. में उसने बीकानेर की स्थापना कर उसे राठौड़ सत्ता का दूसरा केन्द्र बनाया। इसने देशनोक में करणीमाता के मूल मंदिर का निर्माण करवाया।

राव लूणकर्ण (1505 – 1526 ई.) – राव लूणकर्ण राव बीका का छोटा पुत्र था, इसने नागौर के शासक मुहम्मद खाँ को हराया। यह 1526 ई. में ढोसी के युद्ध में नारनौल के नवाब अबीमीरा से लड़ता हआ मारा गया। बीठू सूजा ने अपने ग्रंथ राव जैतसी रो छन्द में इसे 'कलियुग का कर्ण' कहा है। कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकाव्यम नामक ग्रंथ में इसकी दानशीलता की तुलना कर्ण से की गई हैं। 'लूणकरणसर' झील का निर्माता भी इसे स्वीकार किया जाता है।

राव जैतसी (1526 – 1541 ई.) – जैतसी ने 1534 ई. में काबुल के मुगल शासक कामरान (हूमायूँ का भाई) को पराजित किया। इस युद्ध का वर्णन बीठू सूजा ने अपने ग्रंथ 'राव जैतसी रो छन्द' में किया। इसने बीकानेर पर मालदेव के आक्रमण के दौरान अपने मंत्री नागराज को शेरशाह से सहायता प्राप्त करने भेजा। मगर सहायता आने से पूर्व ही 1541 ई. में साहेबा / पाहेबा (जोधपुर) के युद्ध में राव जैतसी मालदेव की सेना से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।

राव कल्याणमल (1541–1574 ई.) – कल्याणमल ने खानवा के युद्ध (1527 ई.) में राणा सांगा की ओर से भाग लिया। कल्याणमल ने 1544 ई. में गिरि सुमेल के युद्ध में मालदेव के विरुद्ध शेरशाह की ओर से भाग लिया। इसने भटनेर के किले पर अधिकार किया तथा 1570 ई. में अकबर के 'नागौर दरबार' में उपस्थित होकर मुगल अधीनता स्वीकार कर ली। कल्याणमल मुगल अधीनता स्वीकार करने वाला पहला राठौड़ शासक था। कल्याणमल के दो पुत्र थे – रायसिंह व पृथ्वीराज। रायसिंह को अकबर ने 1572 में जोधपुर का प्रशासक नियुक्त किया था, वहीं उसका दूसरा पुत्र पृथ्वीराज अकबर का दरबारी कवि था,

जिसने बेलि किसन रूकमणी री नामक ग्रंथ की रचना की।

राव रायसिंह (1574 – 1612 ई.) – यह 1570 ई. के अकबर के 'नागौर दरबार' के समय मुगल सेना में सम्मिलित हुआ। इसने अकबर के गुजरात अभियान व कंधार अभियान में अपनी वीरता दिखाई। अकबर ने 1572 ई. में इसे जोधपुर का प्रशासक नियुक्त किया। 1574 ई. में रायसिंह 'महाराजाधिराज' की उपाधि के साथ बीकानेर का शासक बना। रायसिंह ने बीकानेर के जूनागढ़ दुर्ग का निर्माण करवाया तथा किले के दरवाजे पर जयमल–फत्ता की पाषाण मूर्तियाँ लगवाई। किले के भीतर इसने एक प्रशस्ति लिखवाई, जिसे रायसिंह प्रशस्ति कहा जाता है। इसके समय में भीषण अकाल पड़ा, जिससे निपटने हेतु इसने बहुत धन खर्च किया था। मुंशी देवीप्रसाद ने इसे 'राजपूताने का कर्ण' की संज्ञा दी।

राव कर्णसिंह (1631 – 1668 ई.) – कर्णसिंह ने मुगल सम्राट शाहजहाँ के दक्षिण अभियानों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जाखणियाँ गाँव के सीमा विवाद को लेकर इसका नागौर के शासक अमरसिंह से युद्ध (1642–1644 ई.) हुआ, जो 'मतीरे की राड़' के नाम से जाना जाता है। मुगल उत्तराधिकार युद्ध के समय कर्णसिंह तटस्थ रहा। मगर युद्ध में औरंगजेब का पलड़ा भारी देखकर अपने पुत्र पद्मसिंह व केसरीसिंह को औरंगजेब की सहायतार्थ भेजा। औरंगजेब के शासक बनने के उपरान्त वह उसकी सेवा में चला गया। चिंतामणि भट्ट के ग्रंथ शुकसप्तति में कर्णसिंह को 'जांगलधर बादशाह' कहा गया है। कर्णसिंह ने साहित्य कल्पद्रमु और उसके दरबारी विद्वान गंगानन्द मैथिल ने कर्णभूषण और काव्य डाकिनी नामक ग्रंथ लिखे।

शाकम्भरी का चौहान वंश व इस वंश के प्रतापी शासक

इस चौहान वंश की उत्पत्ति के विषय में बहुत विवाद है। वंशावलियों और ख्यातों ने इनको अग्निवंशीय माना है। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के विचार से ये सूर्यवंशीय क्षत्रिय थे और अचलेश्वर मंदिर के लेख में इन्हें चन्द्रवंशीय माना गया है। कई विद्वान इन्हें आर्य मानकर विदेशी मानते हैं। इन सभी मतों का विवेचन करते हुए डॉ. दशरथ शर्मा चौहानों की उत्पत्ति ब्राह्मण वंश से मानते हैं।

बिजौलिया शिलालेख के अनुसार सांभर झील का प्रवर्तक वासुदेव चौहानों का आदि पुरुष था, जिसका समय 551 ई. के लगभग माना जाता है। प्रारम्भ में चौहान गुर्जर–प्रतिहारों के सामन्त थे परन्तु गूवक प्रथम ने गुर्जर प्रतिहारों की अधीनता से चौहानों को मुक्त करवाया। इसी का वंशज सामंत साँभर का शासक था, जो वत्सगोत्र ब्राह्मणवंश में पैदा हुआ था। वाक्पतिराज चौहानों का शक्तिशाली शासक हुआ, जिसने प्रतिहारों को परास्त कर अपनी शक्ति का परिचय दिया। विग्रहराज द्वितीय चौहानों का एक अन्य शक्तिशाली शासक था। 983 ई. का हर्षनाथ लेख उसकी विजयों का उल्लेख करता है। उसने गुजरात के चालुक्य शासक मूलराज को परास्त किया। विग्रहराज द्वितीय के बाद दुर्लभराज और गोविन्द तृतीय शासक हुए। पृथ्वीराज विजय नामक ग्रंथ में गोविन्द तृतीय की उपाधि 'वैरीघट्ट' (शत्रुसंहारक) मिलती है। फरिश्ता के अनुसार गोविन्द तृतीय ने गजनी के शासक को मारवाड़ में आगे बढ़ने से रोका था।

अजयराज (1105–1133 ई.) – अजयराज, जो 1105 ई. में शासक बना, इस वंश का एक प्रतापी शासक था। 1113 ई. में इसने 'अजयमेरु' (अजमेर) नगर बसाया तथा चाँदी एवं ताँबे के सिक्के चलाये जो 'अजयप्रिय द्रम्भ' कहलाये। कुछ मुद्राओं पर उसकी रानी सोमलवती का नाम भी अंकित मिलता है। अजयराज शैव मतावलम्बी होने के साथ–साथ एक धर्म–सहिष्णु शासक था। उसने जैन और वैष्णव धर्मावलम्बियों को सम्मान की दृष्टि से देखा। उसने नये नगर में जैन धर्मावलम्बियों को मन्दिर बनाने की अनुमति दी और पार्श्वनाथ के मन्दिर के लिए स्वर्ण कलश प्रदान किया।

अर्णोराज (1133 –1155 ई.) – अर्णोराज ने तुर्कों एवं मालवा के शासकों को परास्त किया, मगर गुजरात के शासक कुमारपाल चालुक्य से परास्त हुआ। इसने अजमेर में 'आनासागर झील' एवं पुष्कर में 'वराह मंदिर' का निर्माण करवाया। अर्णोराज शैव था, किन्तु उसमें अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति सहिष्णुता

की भावना थी। उसने अजमेर में खरतगरच्छ के अनुयायियों के लिए भूमिदान दिया। देवबोध और धर्मघोष उसके समय के प्रकाण्ड विद्वान थे जिनको उसने सम्मानित किया था। वैसे तो चालुक्यों के हाथों पराजय से उसे कुछ मान–हानि उठानी पड़ी थी, फिर भी गजनवियों को परास्त कर तथा मालवा और हरियाणा अभियानों का नेतृत्व कर उसने अपने वंश के प्रभुत्व को नहीं घटने दिया।

विग्रहराज चतुर्थ (1158–1163 ई.) – विग्रहराज ने तोमरों को पराजित कर दिल्ली पर अधिकार किया। यह दिल्ली पर अधिकार करने वाला पहला चौहान शासक था। इसने गजनी के खुशरूशाह को भी परास्त किया। जयानक भट्ट ने इसे 'कवि बान्धव' की उपाधि दी। विग्रहराज ने हरकेलि और उसके दरबारी विद्वान सोमदेव ने ललित विग्रहराज नाटक की रचना की। इसने अजमेर में एक संस्कृत पाठशाला बनवाकर उस पर हरकेलि नाटक की पंक्तियां खुदवाई। कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसे तुड़वाकर वहाँ 'ढाई दिन का झोंपड़ा' मस्जिद बनवाई। विग्रहराज ने बीसलपुर बसाकर वहाँ बीसलपुर झील बनवाई।

विग्रहराज चतुर्थ के मूल्यांकन में डॉ. दशरथ शर्मा लिखते हैं कि उसकी महत्ता निर्विवाद है, क्योंकि एक सेनाध्यक्ष के साथ–साथ वह एक विजेता, साहित्य का संरक्षक, अच्छा कवि और सूझ–बूझ वाला निर्माता था। पृथ्वीराज विजय का लेखक लिखता है कि जब विग्रहराज की मृत्यु हो गयी तो 'कविबान्धव' की उपाधि निरर्थक हो गयी, क्योंकि इस उपाधि को धारण करने की किसी में क्षमता नहीं रही थी। सोमदेव तो विग्रहराज को वीरों में ही नहीं वरन् विद्वानों में भी अग्रणी मानता था। ये केवल उसकी मिथ्या प्रशंसा नहीं है, हरकेलि नाटक से उसकी योग्यता आँकी जा सकती है। किलहोर्न ने भी उसकी विद्वत्ता की प्रशंसा करते हुए स्वीकार किया है कि वह उन हिन्दू शासकों में से एक व्यक्ति था जो कालिदास और भवभूति की होड़ कर सकता था। विग्रहराज का समय सपादलक्ष का स्वर्ण काल था।

पृथ्वीराज तृतीय (1177–1192 ई.) – शाकम्भरी के चौहान शासकों में सबसे प्रसिद्ध पृथ्वीराज तृतीय 11 वर्ष की आयु में शासक बना। 1182 ई. में इसने सतलज प्रदेश के भण्डानकों को परास्त किया। इसी वर्ष इसने महोबा के चन्देल शासक को पराजित किया, जिसमें प्रसिद्ध वीर 'आल्हा–ऊदल' लड़ते हुए मारे गए। पृथ्वीराज ने कन्नौज के गहड़वाल शासक जयचन्द को परास्त किया एवं स्वयंवर के समय उसकी बेटी संयोगिता का अपहरण कर उससे विवाह कर लिया। तराइन के प्रथम युद्ध (1191 ई.) में तो गौरी को उसने पराजित किया, मगर 1192 ई. में तराइन के द्वितीय युद्ध में वह मुहम्मद गौरी से पराजित हुआ, जिससे चौहान राज्य का तो पतन हुआ ही, भारत में तुर्की शासन की नींव भी पड़ी।

पृथ्वीराज तृतीय वीर, विद्यानुरागी एवं गुणीजनों का सम्मान करने वाला था। पृथ्वीराज विजय का रचयिता जयानक, पृथ्वीराज रासो का लेखक चन्दबरदाई उसके दरबार की शोभा बढ़ाते थे।

संयोगिता–स्वयंवर कथा – कन्नौज के शासक जयचन्द ने राजसूय यज्ञ किया तथा अपनी पुत्री संयोगिता के विवाह के लिए स्वयंवर का आयोजन भी किया, जिसमें पृथ्वीराज को छोड़कर कई राजा, महाराजाओं को आमंत्रित किया गया था। इतना ही नहीं पृथ्वीराज को अपमानित करने के लिए जयचंद ने स्वयंवर–स्थल के बाहर द्वारपाल के रूप में पृथ्वीराज की मूर्ति रख दी। संयोगिता एवं पृथ्वीराज एक–दूसरे को मन से चाहते थे। अतः संयोगिता वरमाला लेकर एक–एक राजा, महाराजा को देखती हुई आगे बढ़ती जा रही थी। पृथ्वीराज को न पाकर वह मन ही मन बड़ी दुःखी थी किन्तु जब वह दरवाजे तक पहुँची तो उसे द्वारपाल के रूप में अपने प्रेमी की मूर्ति नजर आई। उसने माला उस मूर्ति के गले में डाल दी। उस समय तक पृथ्वीराज भी वहाँ पहुँच चुका था। उसने संयोगिता को वहाँ से अपने साथ लेकर अजमेर की ओर प्रस्थान किया और चौहान सैनिकों ने गहड़वालों को उसका पीछा करने से रोका। अजमेर पहुँचकर पृथ्वीराज ने संयोगिता से विवाह कर लिया, पर इस घटना से जयचंद व पृथ्वीराज के बीच शत्रुता और बढ़ गई।

संयोगिता–कथा की ऐतिहासिकता – इस कथा की सत्यता एवं ऐतिहासिकता के संबंध में इतिहासकार एक मत नहीं है। डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसे कपोल कल्पना मानते हुए कहा है कि

प्रबन्ध कोष, हम्मीर महाकाव्य, पृथ्वीराज प्रबन्ध एवं प्रबन्ध चिन्तामणि जैसे समकालीन ग्रन्थों में इस घटना का कोई जिक्र नहीं है। डॉ. रोमिला थापर एवं डॉ. आर. एस. त्रिपाठी ने भी इसे सही नहीं माना है। समकालीन फारसी तवारीखों में इस घटना का वर्णन नहीं मिलता। किन्तु अबुल फजल ने इसका वर्णन अवश्य किया है। डॉ. दशरथ शर्मा ने बताया है कि हम्मीर महाकाव्य तथा रंभामंजरी में ढेर सारी गलतियां हैं तथा इनमें वर्णन न मिलने से सारी घटना को ही काल्पनिक मान लिया जाय यह उचित नहीं है। उन्होंने घटना की सत्यता को स्वीकार करते हुए बताया कि प्रेम जीवन का एक अंग है और वह सत्य एवं वास्तविक है। अतः यह घटना घटी हो तो कोई आश्चर्य नहीं। सी. वी. वैद्य एवं डॉ. गोपीनाथ शर्मा ने भी इसे स्वीकार किया है।

इस प्रकार संयोगिता अपहरण की घटना में कोई संदेह नहीं रह जाता है। सदियों से चली आ रही इस कथा में समय के साथ उतार–चढ़ाव या अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों का आना स्वाभाविक है किन्तु इससे इस घटना की सत्यता पर शंका करना उचित प्रतीत नहीं होता।

रणथम्भौर का चौहान वंश व इस वंश के प्रतापी शासक

रणथम्भौर के चौहान वंश का संस्थापक गोविन्दराज (1194 ई.), पृथ्वीराज तृतीय का पुत्र था। उसके उत्तराधिकारी क्रमशः वाल्हण, प्रल्हादन और वीर नारायण थे। वीरनारायण का संघर्ष इल्तुतमिश से हुआ, जिसमें उसकी मृत्यु हो गई थी। उसके उत्तराधिकारी वागभट्ट ने भी दिल्ली से भेजे गये तुर्क अधिकारियों से अपने पैतृक राज्य को बचाया। उसके पुत्र जैत्रसिंह ने नासिरुद्दीन द्वारा भेजी गयी सेना को रणथम्भौर नहीं जीतने दिया, परन्तु उसे कर देने के लिए विवश होना पड़ा।

हम्मीर (1282–1301 ई.) – 1282 ई. में हम्मीर ने अपने राज्यारोहण के बाद दिग्विजय की नीति अपनाई। आबू, काठियावाड़, पुष्कर, चम्पा, धार आदि राज्यों को इसने अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया एवं मेवाड़ के शासक समरसिंह को परास्त किया। 1291 ई. में जलालुद्दीन खिलजी ने रणथम्भौर पर आक्रमण किया, मगर उसे सफलता नहीं मिली।

हम्मीर द्वारा मंगोल विद्रोहियों (मुहम्मदशाह व केहब्रू) को शरण देने से दिल्ली का सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी हम्मीर से नाराज हो गया। हम्मीर ने जब विद्रोहियों को लौटाने से इनकार कर दिया, तब 1299 ई. में उसे खिलजी के आक्रमण का सामना करना पड़ा। मगर तुर्क सेना को उसने पराजित कर दिया। 1301 ई. में अलाउद्दीन स्वयं सेना लेकर रणथम्भौर आया, मगर जब युद्ध में उसे सफलता नहीं मिली तो उसने छल–कपट का सहारा लिया। अलाउद्दीन ने हम्मीर के सेनानायक रणमल और रतिपाल को किला देने का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। इनके विश्वासघात के कारण किले पर तुर्कों का अधिकार हो गया। हम्मीर लड़ता हुआ मारा गया और किले में हम्मीर की पत्नी रंगदेवी के नेतृत्व में महिलाओं ने जौहर कर लिया।

हम्मीर वीर, उदार एवं शरणागत की रक्षा करने वाला शासक था। नयनचंद्र सूरी के हम्मीर महाकाव्य, जोधराज के हम्मीर रासो एवं चन्द्रशेखर के हम्मीर हठ नामक ग्रंथों से हम्मीर के शौर्य की जानकारी मिलती है। आज भी जनमानस में हम्मीर के लिए यह दोहा प्रसिद्ध है –

सिंह–सवन सत्पुरूष–वचन, कदली फळै इक बार।

तिरिया–तेल हमीर–हठ, चढ़ै न दूजी बार।।

जालोर का चौहान वंश व इस वंश के प्रतापी शासक

जालोर मध्यकालीन इतिहास में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। दिल्ली से गुजरात व मालवा जाने वाले मार्ग पर स्थित जालोर पर अधिकार स्थापित करना, दिल्ली के प्रत्येक शासक के लिए एक आवश्यक कार्य था। दिल्ली सल्तनत (1206–1526 ई.) के समय जालोर पर चौहानों का अधिकार था। जालोर के इस चौहान वंश का संस्थापक कीर्तिपाल था, जिसने 1181 ई. में इस राजवंश की नींव

डाली थी।

कान्हड़देव (1305–1311 ई.) – कान्हड़देव जालौर के चौहान शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली था। अलाउद्दीन खिलजी की सेना के गुजरात आक्रमण के समय, रास्ता देने को लेकर कान्हड़देव एवं अलाउद्दीन खिलजी के मध्य विवाद हुआ। 1305 ई. में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने सेनानायक ऐन–उल–मुल्क मुल्तानी को सेना सहित जालोर भेजा। वह कान्हड़देव को समझा–बुझाकर दिल्ली ले आया। दिल्ली दरबार का माहौल कान्हड़देव के स्वाभिमान के विरुद्ध था। कान्हड़देव दिल्ली दरबार से चला आया, जिसके बाद कान्हड़देव व अलाउद्दीन के बीच संघर्ष हुआ। नैणसी ने युद्ध का कारण कान्हड़देव के पुत्र वीरमदेव द्वारा सुल्तान की पुत्री फिरोजा से विवाह करने से इन्कार करना बताया है। 1308 ई. में सुल्तान ने जालोर के शक्तिशाली किले सिवाना पर अधिकार कर लिया और उसका नाम 'खैराबाद' रखा तथा कमालुद्दीन गुर्ग को वहाँ का प्रतिनिधि नियुक्त किया। 1311 ई. में अलाउद्दीन ने जालोर पर घेरा डाल दिया, लेकिन सुल्तान को सफलता नहीं मिल सकी। अंत में कान्हड़देव के एक दहिया सरदार बीका के विश्वासघात के कारण दुर्ग पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया। कान्हड़देव लड़ता हुआ मारा गया और किले की महिलाओं ने जौहर किया। अलाउद्दीन ने जालोर जीतकर उसका नाम 'जलालाबाद' रख दिया।

आमेर का कच्छवाहा वंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक

कच्छवाहा अपनी उत्पत्ति राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश से मानते हैं। सूर्यमल्ल मीसण के अनुसार कूर्म नामक रघुवंशी शासक की संतति होने से ये कूर्मवंशीय कहलाने लगे और साधारण भाषा में उन्हें कच्छवाहा कहा जाने लगा। ढूंढाड़ प्रदेश में अपना राज्य स्थापित करने के लिए कच्छवाहों को मीणाओं तथा बडगूजरों से संघर्ष करना पड़ा। इनकी प्रथम राजधानी दौसा रही। कच्छवाहा प्रारंभ में चौहानों के सामंत थे। 1137 ई. में दुलहराय ने बडगूजरों को परास्त कर ढूंढाड़ में नवीन राज्य स्थापित किया। दुलहराय ने ही जमवारामगढ़ में मीणाओं को परास्त कर उसे अपनी राजधानी बनाया। 1207 ई. में कोकिलदेव ने आमेर में मीणाओं को परास्त कर उसे अपनी राजधानी बनाया।

भारमल (1547–1573 ई.) – भारमल बहुत ही कठिन परिस्थितियों में आमेर का शासक बना था। अपनी सत्ता के लिए उसे मजबूत सहारे की आवश्यकता थी और यह मजबूत सहारा उसे मुगल शासक अकबर के रूप में मिला। भारमल मुगल अधीनता स्वीकार करने वाला पहला राजपूत था। अकबर जनवरी, 1562 ई. में अजमेर की यात्रा पर आया था, अजमेर से लौटते समय 'सांभर' में भारमल ने 1562 ई. में अपनी पुत्री हरखाबाई (जिसे कालांतर में मरियम उज्जमानी नाम से जाना गया) का विवाह अकबर के साथ किया। जहाँगीर इसी हरखाबाई का पुत्र था। 1562 ई. में सांभर में ही अपने पुत्र भगवानदास और पौत्र मानसिंह सहित इसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

भगवानदास (1573–1589 ई.) – भगवानदास 1573 ई. में आमेर की गद्दी पर बैठा। इसने सरनल के युद्ध में अपनी वीरता का परिचय दिया। यह सात वर्ष तक पंजाब का सूबेदार रहा। इसने 1585 ई. में अपनी पुत्री मानबाई का विवाह जहाँगीर के साथ किया। खुसरो मानबाई व जहाँगीर का पुत्र था। 1589 ई. में लाहौर में भगवानदास की मृत्यु हुई।

मानसिंह (1589–1614 ई.) – मानसिंह केवल 12 वर्ष की आयु में ही मुगलों की सेवा में चला गया था। इसने अकबर एवं जहाँगीर दो मुगल सम्राटों की सेवा की। अकबर के रणथम्भौर अभियान में (1569 ई.) सुर्जन हाड़ा को मुगल अधीनता स्वीकार कराने में मानसिंह ने भूमिका निभाई। गुजरात अभियान के दौरान 1573 ई. में मानसिंह महाराणा प्रताप के पास संधि का दूसरा प्रस्ताव लेकर गया और 1576 ई. में हल्दीघाटी के युद्ध में अकबर की सेना का नेतृत्व किया। यह अकबर के नवरत्नों में सम्मिलित था। अकबर ने इसे 'फर्जन्द' (बेटा) की उपाधि व 7000 का मनसब दिया। 1589 ई. में जब यह बिहार का सूबेदार था, तो इसके पिता भगवानदास की मृत्यु हो गई और यह 1589 ई. में आमेर का शासक बना। मानसिंह ने

1592 ई. में उड़ीसा जीतकर पहली बार उसे मुगल साम्राज्य का अंग बनाया। मानसिंह की मृत्यु 1614 ई. में इलिचपुर में हुई। मानसिंह विद्वानों का आश्रयदाता था। इसके समय में मान–चरित्र महाराजकोष नामक ग्रंथ रचे गये। इसी के समय मुरारीदान ने मान प्रकाश व जगन्नाथ ने मानसिंह कीर्ति मुक्तावली की रचना की। मानसिंह के समय ही रानी कंकावती ने अपने पुत्र जगतसिंह की स्मृति में जगत शिरोमणी मंदिर का निर्माण करवाया था।

मिर्जा राजा जयसिंह (1621–1667 ई.) – 11 वर्ष की आयु में 1621 ई. में जयसिंह आमेर का शासक बना। इसे तीन मुगल सम्राटों जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब की सेवा में रहने का अवसर प्राप्त हुआ। 1623 ई. में इसे मलिक अम्बर के विरुद्ध दक्षिण में भेजा गया, जहाँ इसने अद्‌भुत साहस और वीरता का परिचय दिया। 1629 ई. में इसने उत्तर–पश्चिमी सीमांत में उजबेगों के विद्रोह को दबाया। 1630 ई. में जयसिंह ने खान–ए–जहाँ लोदी के विद्रोह को दबाया। यह 1636 ई. में शाहजहाँ के साथ बीजापुर और गोलकुण्डा अभियान पर दक्षिण भारत गया।

1637 ई. में जयसिंह को मिर्जा राजा की पदवी देकर शुजा के साथ कंधार भेजा गया। उत्तराधिकार युद्ध के समय इसे शुजा के विरुद्ध भेजा गया, जहाँ बहादुरपुर के युद्ध (1658 ई.) में इसने शुजा को पराजित किया। उत्तराधिकार युद्ध के अंत में इसने औरंगजेब का पक्ष लिया। जयसिंह की सैनिक योग्यता और कूटनीति से प्रभावित होकर औरंगजेब ने इसे दक्षिण में मराठों के विरुद्ध भेजा। दक्षिण में जयसिंह ने अपनी कूटनीति से शिवाजी को अकेला कर दिया और पुरंदर को जीतने में सफल रहा। जयसिंह ने शिवाजी के विरुद्ध अभियान पर जाते समय कहा था, कि हम शिवा को वृत्त के केन्द्र की तरह घेर लेंगे। जयसिंह की कुशलता का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है, कि महान मराठा शासक शिवाजी को वह रोकने में सफल रहा, जिसने अफजल खाँ जैसे सेनानायक को पराजित किया था। अंत में शिवाजी और जयसिंह के मध्य संधि हो गयी जो पुरंदर की संधि (1665 ई.) के नाम से जानी जाती है। पुरंदर की संधि जयसिंह की दूरदर्शिता एवं शक्ति की पराकाष्ठा थी। वह अनेक भाषाओं का ज्ञाता एवं विद्वानों का सम्मान करने वाला था। प्रसिद्ध कवि बिहारी का वह आश्रयदाता था। बिहारी ने बिहारी सतसई नामक ग्रंथ की रचना की थी।

सवाई जयसिंह (1700–1743 ई.) – 3 दिसम्बर, 1688 को जन्मे जयसिंह में जयसिंह प्रथम की तुलना में वीरता और वाक्‌पटुता को अधिक मात्रा में पाकर औरंगजेब ने इसका नाम सवाई जयसिंह रख दिया था, क्योंकि वह जयसिंह प्रथम से बढ़कर (सवाया) था। इसी समय से जयपुर के सभी राजा अपने नाम के पहले 'सवाई' पद का प्रयोग करने लगे। 1700 ई. में जयसिंह ने आमेर का राज्य भार संभाला। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद हुए उत्तराधिकार युद्ध में जयसिंह ने आजम का पक्ष लिया, मगर जाजऊ के युद्ध में मुअज्जम विजयी रहा। अतः मुअज्जम, जो बहादुरशाह के नाम से शासक बना, ने आमेर पहुँचकर विजयसिंह को शासक घोषित कर दिया तथा आमेर का नाम मोमिनाबाद रख दिया।

मेवाड़ की सहायता से जयसिंह ने आमेर पुनः प्राप्त कर लिया, मुगल सम्राट ने भी इसे आमेर का शासक स्वीकार कर लिया। फर्रुखसियर ने 1713 ई. में जयसिंह को मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। जयसिंह के प्रयासों से 17 जुलाई, 1734 को राजपूत राजाओं का हुरड़ा में सम्मेलन बुलाया गया ताकि संगठित होकर मराठों का मुकाबला किया जा सके। किंतु आपसी अविश्वास से यह योजना कार्यरूप न ले सकी। सवाई जयसिंह ने 1729 ई. में बूंदी के मामले में हस्तक्षेप किया, जिससे मराठों को राजस्थान की आंतरिक राजनीति में हस्तक्षेप करने का अवसर मिला। जयसिंह ने मराठों एवं मुगल सम्राट में समझौता कराने के लिए मध्यस्थता की। 1743 ई. में जयसिंह की मृत्यु हो गई। इसने सात मुगल शासकों का शासन काल देखा था।

1725 ई. में सवाई जयसिंह ने नक्षत्रों की शुद्ध सारणी बनवायी और उसका नाम जीज मोहम्मदशाही रखा। उसने जयसिंह कारिका नामक ज्योतिष ग्रंथ की रचना भी की। जयसिंह ने जयपुर, दिल्ली, मथुरा, उज्जैन और बनारस में वेधशालाएँ बनवाईं। जयपुर की वेधशाला सबसे बड़ी है, जिसे जंतर–मंतर कहा

जाता है। जुलाई 2010 में इसे यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर सूची में शामिल किया गया है। जयसिंह ने एक बंगाली वास्तुशास्त्री विद्याधर से एक नगर का नक्शा बनवाकर 1727 ई. में आयताकार खण्डों वाले एक नगर का निर्माण किया, जो आज जयपुर के नाम से प्रसिद्ध है। वह अंतिम हिंदू नरेश था, जिसने अश्वमेध यज्ञ संपन्न करवाया। 1734 ई. में इसने जयपुर में नाहरगढ़ किले का निर्माण करवाया। इसने जयगढ़ में जयबाण तोप का निर्माण करवाया। सवाई जयसिंह ने चन्द्रमहल, सिसोदिया रानी का महल व जलमहल का निर्माण करवाया। सवाई जयसिंह पहला राजपूत हिंदू शासक था, जिसने सती प्रथा की रोकथाम हेतु प्रयास किये तथा विधवा विवाह को मान्यता प्रदान करने हेतु नियम बनाये।

जैसलमेर का भाटी राजवंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक

जैसलमेर का भाटी राजवंश स्वयं को चन्द्रवंशीय यादवों से संबंधित करता है और ये अपना संबंध श्रीकृष्ण से जोड़ते हैं। विजयराज के शासनकाल से भाटियों का नियमित इतिहास मिलता है। विजयराज का पुत्र भोज हुआ, वह गौरियों के विरुद्ध लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इसका उत्तराधिकारी जैसल हुआ, जिसने जैसलमेर की नींव रखी।

जैसलमेर के किले का इतिहास 'ढाई साके' के लिए प्रसिद्ध है। पहला साका, जैसलमेर के शासक मूलराज के समय हुआ, जब अलाउद्दीन खिलजी ने जैसलमेर पर आक्रमण किया था। दूसरा साका, रावल दूदा के समय हुआ, जब फिरोजशाह तुगलक ने जैसलमेर पर आक्रमण किया था। तीसरा अर्द्ध साका, 1550 ई. में हुआ, जब जैसलमेर के शासक लूणकरण ने कंधार के शासक अमीर अली को शरण दी थी और अमीर अली ने विश्वासघात करते हुए, लूणकरण पर आक्रमण कर दिया, लूणकरण अपने साथियों के साथ लड़ता हुआ मारा गया, किंतु अंतिम रूप से भाटी विजयी रहे, अतः जौहर नहीं हुआ। यह घटना 'अर्द्ध साका' कही जाती है।

अकबर के नागौर दरबार (1570 ई.) में हरराय भाटी ने अकबर की अधीनता स्वीकार की तथा उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह किया। भाटी वंश का अंतिम शासक जवाहर सिंह था।

भरतपुर का जाट राजवंश एवं इस वंश के प्रतापी शासक

जाट एक कृषक जाति है, जिसका एक राजनैतिक शक्ति के रूप में उत्थान औरंगजेब के शासनकाल में हुआ। 1669 ई. में मथुरा क्षेत्र के जाटों ने अपने नेता गोकुल के नेतृत्व में औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। गोकुल को मार दिया गया, किंतु उसके द्वारा शुरू किये गये संघर्ष को राजाराम ने जारी रखा। 1688 ई. में राजाराम की मृत्यु के बाद उसके भतीजे चूड़ामन ने जाटों को नेतृत्व प्रदान किया।

चूड़ामन (1695–1721 ई.) – भरतपुर के स्वतंत्र जाट राज्य का संस्थापक चूड़ामन था। चूड़ामन ने मथुरा एवं आगरा के मुगल इलाकों में धावे बोलकर मुगल शक्ति को झकझोर दिया। मुगल सम्राट ने कच्छवाहा नरेश बिशनसिंह को चूड़ामन का दमन करने के लिए भेजा, पर उसे पूर्ण सफलता नहीं मिली। धीरे–धीरे चूड़ामन ने शक्ति प्राप्त की ओर थून नामक स्थान पर किला बनाकर अपना राज्य स्थापित किया।

बदन सिंह (1723–1756 ई.) – बदनसिंह जाट नेता चूड़ामन का उत्तराधिकारी था। जयसिंह ने इसे ब्रजराज की उपाधि एवं जागीरें प्रदान कीं। बदनसिंह ने डीग को अपना निवास बनाया और वहाँ एक सुदृढ़ गढ़ का निर्माण कर सुंदर जलमहल बनाए और बाग–बगीचे लगाए। डीग के अतिरिक्त बदन सिंह ने कुम्हेर, भरतपुर व वैर में भी दुर्गों का निर्माण करवाया था। बदन सिंह शांतिप्रिय शासक था, उसने जाट–कच्छवाहा मैत्री कर अपने राज्य का विस्तार किया। 1756 ई. में डीग में उसकी मृत्यु हो गई।

महाराज सूरजमल (1756–1763 ई.) – महाराज सूरजमल बदनसिंह (1723–56 ई.) का पुत्र और उत्तराधिकारी था। सूरजमल ने भरतपुर में नवीन गढ़ का निर्माण करवाकर उसे अपनी राजधानी बनाया। इसने जयपुर के साथ मैत्री और सहयोग की नीति का अनुसरण किया। जयसिंह की मृत्यु के बाद जयपुर

की गद्दी के लिये हुए उत्तराधिकार युद्ध (1743–50 ई.) में इसने ईश्वरीसिंह के पक्ष में युद्ध किया। 1760 ई. में यह अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध मराठों के पक्ष में लड़ने गया, मगर मराठा सेनानायक सदाशिवराव भाऊ के व्यवहार से खिन्न होकर यह भरतपुर लौट आया। पानीपत की पराजय के बाद मराठों को सूरजमल ने शरण एवं सहायता दी। 1763 ई. में रूहेलों के विरुद्ध युद्ध में इसकी मृत्यु हो गई। इस युद्ध में सूरजमल का प्रतिद्वंद्वी नजीब खान था, जिसने सूरजमल की मृत्यु की पुख्ता पुष्टि होने पर ही विश्वास किया था। यह सूरजमल का अपने शत्रुओं के मन में खौफ का एक बड़ा उदाहरण है।

महाराज सूरजमल

महाराज सूरजमल के बारे में लिखते हुए कालिकारंजन कानूनगो ने लिखा है, ''उसमें अपनी जाति के सभी गुण–शक्ति, साहस, चतुराई, निष्ठा और कभी पराजय स्वीकार न करने वाली अदम्य भावना, विद्यमान थे।

करौली का यादव वंश

करौली का राजवंश स्वयं को मथुरा की शूरसेन शाखा से संबंधित करते हुए अपना संबंध श्रीकृष्ण से जोड़ता है। करौली के यादव वंश की स्थापना विजयपाल द्वारा 1040 ई. में की गई। इसने बयाना (भरतपुर) को अपनी राजधानी बनाया। 1348 ई. में अर्जुनपाल ने कल्याणपुर बसाया, जिसे वर्तमान में करौली के नाम से जाना जाता है। धर्मपाल द्वितीय ने 1650 ई. में करौली को अपनी राजधानी बनाया। गोपालपाल ने करौली में 'मदनमोहन मंदिर' का निर्माण करवाया।

महाराजा हरबक्षपाल ने 9 नवम्बर, 1817 को अंग्रेजों से संधि कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। 1852 ई. में नरसिंहपाल की मृत्यु के बाद डलहौजी ने करौली का विलय कंपनी राज्य में करने के लिए बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स से सिफारिश की, लेकिन डायरेक्टर्स ने इसकी अनुमति नहीं दी। डेढ़ वर्ष तक विचार–विमर्श के बाद मदनपाल (1854–1869 ई.) को करौली का शासक बनाया गया।

परमार वंश

परमार का शाब्दिक अर्थ शत्रु को मारने वाला होता है। प्रारंभ में परमारों का शासन आबू के आस–पास के क्षेत्रों तक ही सीमित था। प्रतिहारों की शक्ति के कम होने के उपरांत परमारों की राजनीतिक शक्ति में वृद्धि हुई।

आबू के परमार – आबू के परमार वंश का संस्थापक 'धूमराज' था, लेकिन इनकी वंशावली उत्पलराज से प्रारंभ होती है। पड़ौसी होने के कारण आबू के परमारों का गुजरात के शासकों से लगातार संघर्ष चलता रहा। गुजरात के शासक मूलराज सोलंकी से पराजित होने के कारण आबू के शासक धरणीवराह को राष्ट्रकूट धवल की शरण लेनी पड़ी। लेकिन कुछ समय बाद धरणीवराह ने आबू पर पुनः अधिकार कर लिया।

विक्रमदेव का प्रपौत्र धारावर्ष (1163–1219 ई.) आबू के परमारों का शक्तिशाली शासक था। इसने मोहम्मद गौरी के विरुद्ध युद्ध में गुजरात की सेना का सेनापतित्व किया। उसने सोलंकियों की अधीनता का जुआ उतार फेंका। उसने नाड़ौल के चौहानों से भी अच्छे संबंध रखे। उसके पुत्र सोमसिंह के शासनकाल में तेजपाल ने आबू के देलवाड़ा गाँव में 'लूणवसही' नामक नेमिनाथ का मंदिर बनवाया। 1311 ई. के लगभग नाड़ौल के चौहान शासक राव लूम्बा ने परमारों की राजधानी चन्द्रावती पर अधिकार कर लिया और वहाँ चौहान प्रभुत्व की स्थापना कर दी।

मराठों का राजस्थान में प्रवेश

औरंगजेब की मृत्यु (1707 ई.) के बाद मुगल साम्राज्य धीरे–धीरे पतन की ओर बढ़ रहा था। इसी

दौरान पेशवाओं के कुशल नेतृत्व में मराठे अपनी ताकत बढ़ा रहे थे। यद्यपि गुजरात और मालवा – दोनों पर ही मराठों का प्रभाव कायम होता जा रहा था, किन्तु अभी तक किसी मराठा सेनानायक ने राजपूताना में प्रवेश नहीं किया था। पर यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रही, पारस्परिक गृहकलह के कारण राजपूताना में भी मराठों का प्रवेश हो गया। राजस्थान में पारस्परिक गृह–कलह के मुख्य तीन केन्द्र बन गये थे – बूंदी, जयपुर और जोधपुर।

बूंदी–उत्तराधिकार संघर्ष – सवाई जयसिंह अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता था। उसके राज्य की सीमा पर स्थित बूंदी राज्य का राजा बुद्धसिंह, जयसिंह का बहनोई था। 1727 ई. तक साले–बहनोई में घनिष्ठ सम्बन्ध बने रहे, परन्तु फिर अचानक दोनों के सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये और अन्त में बिल्कुल टूट गये और दोनों एक दूसरे के विरोधी बन गये। महाराव बुद्धसिंह जयसिंह की बहिन (कच्छवाही रानी) से घृणा करने लगा और अपनी चूण्डावत रानी के इशारे पर काम करने लगा। कुछ दिनों बाद बुद्धसिंह ने कच्छवाही रानी से उत्पन्न पुत्र भवानीसिंह को अपना पुत्र मानने से भी इन्कार कर दिया। इस पर जयसिंह का क्रोधित होना स्वाभाविक ही था। अतः उसने बुद्धसिंह को सिंहासनच्युत करने का निश्चय कर लिया। जब महाराव बुद्धसिंह किसी कारणवश अपनी राजधानी से दूर गया हुआ था तो उसकी अनुपस्थिति में जयसिंह ने अपनी सेना भेजकर बूंदी दुर्ग पर अधिकार कर लिया तथा करवड़ के जागीरदार हाड़ा सालिमसिंह के द्वितीय पुत्र दलेलसिंह को 1730 ई. में बूंदी की गद्दी पर बैठा दिया। जयसिंह की इस कार्यवाही ने कुछ ही वर्षों बाद मराठों को राजपूताना की राजनीति में हस्तक्षेप करने का मौका दे दिया। 1732 ई. में जयसिंह ने अपनी पुत्री कृष्णाकुमारी का विवाह दलेलसिंह के साथ कर दिया। जयसिंह ने दलेल सिंह का रास्ता साफ करने हेतु भवानी सिंह की हत्या भी करवा दी थी। इस घटना ने कच्छवाही रानी को जयसिंह का विरोधी बना दिया और उसने मराठों से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। मराठे इस अवसर की तलाश में ही बैठे थे।

अतः 18 अप्रैल, 1734 ई. को मल्हार राव होल्कर और राणोजी सिन्धिया के नेतृत्व में मराठा सेना ने बूंदी पर चढ़ाई कर दी। चार दिन के संघर्ष के बाद 22 अप्रैल को बूंदी पर मराठों का अधिकार हो गया। बूंदी में महाराव उम्मेदसिंह (यह बुद्धसिंह का पुत्र था, इस समय बुद्धसिंह अफीम व शराब की मस्ती में अपना जीवन व्यतीत कर रहा था।) का शासन स्थापित हो गया। अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए कच्छवाही रानी ने होल्कर के राखी बाँधकर उसे अपना भाई बनाया। चूँकि उम्मेदसिंह अभी छोटा था अतः प्रतापसिंह को शासन कार्य सौंपा गया। प्रतापसिंह दलेल सिंह का बड़ा भाई था।

हुरड़ा सम्मेलन – मालवा, गुजरात और बुन्देलखण्ड में मराठों को रोकने में मुगल शासन की असफलता तथा राजपूत शासकों के आन्तरिक झगड़ों में मराठों के इस प्रथम हस्तक्षेप ने राजस्थान (यद्यपि यह नाम उस समय प्रचलन में नहीं था) के समस्त विचारशील शासकों की आँखें खोल दीं।

मराठों का सफलतापूर्वक सामना कर सकने के आवश्यक उपाय सोच निकालने के लिए सवाई जयसिंह ने राजस्थान के सारे शासकों को हुरड़ा में एकत्रित करने का प्रयास किया। 16 जुलाई, 1734 ई. को पूर्व–निश्चित स्थान हुरड़ा में सम्मेलन आरम्भ हुआ, जिसकी अध्यक्षता मेवाड़ के नये महाराणा जगतसिंह द्वितीय ने की। सम्मेलन में सवाई जयसिंह के अलावा, जोधपुर का अभयसिंह, नागौर का बख्तसिंह, बीकानेर का जोरावरसिंह, कोटा का दुर्जनसाल, बूंदी का दलेलसिंह, करौली का गोपालदास, किशनगढ़ का राजसिंह आदि छोटे–बड़े नरेश उपस्थित हुए। विचार–विमर्श के बाद 17 जुलाई को सभी शासकों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। समझौते के अनुसार सभी शासक एकता बनाये रखेंगे, एक का अपमान सभी का अपमान समझा जायेगा। कोई राज्य, दूसरे राज्य के विद्रोही को अपने राज्य में शरण नहीं देगा। मराठों के विरुद्ध वर्षा ऋतु के बाद कार्यवाही आरम्भ की जायेगी जिसके लिए सभी शासक अपनी सेनाओं के साथ रामपुरा में एकत्रित होंगे और यदि कोई शासक किसी कारणवश उपस्थित होने में असमर्थ होगा तो वह अपने पुत्र अथवा भाई को भेजेगा। किंतु इस सम्मेलन की योजनाएं कभी धरातल पर नहीं उतर पाई, प्रत्येक शासक के अपने स्वार्थ थे, इसलिए उनमें एकजुटता स्थापित होना

असम्भव था। हुरड़ा सम्मेलन इस प्रकार एक असफल प्रयास साबित हुआ।

जयपुर का उत्तराधिकार संघर्ष – 1708 ई. में सवाई जयसिंह ने मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय की पुत्री चन्द्रकुंवर बाई से विवाह किया था। विवाह से पूर्व जयसिंह ने एक इकरारनामे पर हस्ताक्षर किये थे, जिसमें मेवाड़ की राजकुमारी से उत्पन्न पुत्र को ही, चाहे वह छोटा ही क्यों न हो, जयपुर के राजसिंहासन पर बैठाने की बात कही गयी थी। तत्पश्चात् 1722 ई. में जयसिंह की खींची रानी सूरजकुंवर से एक पुत्र, ईश्वरीसिंह उत्पन्न हुआ और 1728 ई. में मेवाड़ की राजकुमारी चन्द्रकुँवर से एक पुत्र, माधोसिंह उत्पन्न हुआ। अतः जयसिंह के बाद माधोसिंह और ईश्वरीसिंह के बीच उत्तराधिकार का संघर्ष निश्चित हो गया।

सितम्बर, 1743 ई. में सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह गद्दी पर बैठा। किंतु माधोसिंह ने 1708 ई. के इकरारनामे के आधार पर जयपुर राज्य की गद्दी का दावा किया। इस प्रकार ईश्वरीसिंह और माधोसिंह में गृह–कलह आरम्भ हो गया। दोनों पक्षों की ओर से मराठों से सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न आरम्भ हो गये। माधोसिंह की ओर से मल्हारराव होल्कर से सैनिक सहायता प्राप्त की गयी और इसके बदले में होल्कर को 20 लाख रुपये देने का आश्वासन दिया। उधर ईश्वरीसिंह ने राणोजी सिन्धिया से सहायता प्राप्त कर ली। फरवरी 1745 ई. में माधोसिंह ने जयपुर पर चढ़ाई कर दी, किन्तु ईश्वरी सिंह ने अपने मराठा साथियों की सहायता से माधोसिंह और उसके सहयोगियों को परास्त कर खदेड़ दिया। माधोसिंह ने एक बार फिर मल्हारराव से सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए उन्होंने एक प्रतिनिधि को कालपी भेजा और सैनिक सहायता के लिए उसे दो लाख रुपये देने का वचन दिया। मल्हारराव ने अपने पुत्र खांडेराव को एक हजार सवारों के साथ इन तीनों राजपूतों की सहायता करने भेजा। फलस्वरूप 1 मार्च, 1747 ई. को दोनों पक्षों के बीच राजमहल नामक स्थान पर पुनः भीषण युद्ध हुआ। राजमहल के इस युद्ध में ईश्वरीसिंह विजयी हुआ।

राजमहल के युद्ध तक पेशवा का बहुत–कुछ झुकाव ईश्वरीसिंह की ओर था, किन्तु राजमहल के युद्ध के बाद जब महाराणा जगत सिंह (मेवाड़ का शासक) की ओर से अधिक रुपया देने का लालच दिया गया, तब ऋण भार से दबे हुए पेशवा ने ईश्वरीसिंह का साथ छोड़कर माधोसिंह का पक्ष ले लिया। इसके बाद बगरू नामक स्थान पर मराठों के साथ ईश्वरीसिंह की मुठभेड़ हुई। छः दिनों के युद्ध में ईश्वरीसिंह पराजित हुआ (यद्यपि इस समय जाट शासक सूरजमल ने ईश्वरी सिंह की तरफ से लड़ते हुए बड़े साहस का परिचय दिया था) और उसे माधोसिंह को चार परगने देने, उम्मेदसिंह को बूंदी का राज्य लौटाने तथा मराठों को भारी धनराशि देने का वायदा करने को विवश होना पड़ा।

बगरू के युद्ध (अगस्त, 1748) के बाद ईश्वरीसिंह ने जो रुपया मराठों को देने का वायदा किया था, वह उन्हें नहीं दे सका। होल्कर इस धन की वसूली हेतु जयपुर की ओर बढ़ा, मार्ग में उससे जयपुर का राजदूत 2 लाख रुपयों के साथ मिला, पर होल्कर इस राशि से खुश न था, उसने जयपुर की ओर बढ़ना जारी रखा। जयपुर के राजदूत ने लौटकर जब ईश्वरीसिंह को यह सूचना दी तो ईश्वरीसिंह बड़ा भयभीत हुआ, क्योंकि मराठों को देने के लिए उसके पास रकम नहीं थी। तब निराश होकर 13 दिसम्बर, 1750 ई. को ईश्वरी सिंह ने आत्महत्या कर सारे राजनैतिक जंजालों से अपने को आजाद कर लिया।

अब होल्कर ने माधोसिंह को बुलवाकर उसे जयपुर की गद्दी पर बैठाया। माधोसिंह के गद्दी पर बैठते ही मराठों ने उसके सामने धन संबंधी अपनी लम्बी–चौड़ी मांग रखी, माधोसिंह मराठों को सबक सिखाना चाहता था। 10 जनवरी, 1751 ई. को उसे एक सुनहरा अवसर मिल गया। इस दिन लगभग चार हजार मराठों ने नवनिर्मित जयपुर नगर के कलात्मक मन्दिरों व बाजारों को देखने के लिए नगर में प्रवेश किया। दोपहर में माधोसिंह ने नगर के सभी द्वार बन्द करवा दिये और अचानक राजपूत सैनिकों और नागरिकों ने मराठों का कत्लेआम शुरू कर दिया। राजस्थान की राजनीति में राजपूत–मराठा संघर्ष की एक नयी उलझन यहीं से आरम्भ हुई, जो आगे चलकर इन दोनों जातियों के साथ–साथ राजस्थान के लिए भी घातक सिद्ध हुई।

तूंगा का युद्ध

जयपुर राज्य और मराठों के मध्य चौथ को लेकर बार–बार विवाद होता था। फलस्वरूप मराठे महादजी सिंधिया के नेतृत्व में जयपुर राज्य में लूटमार मचाया करते थे। मराठों की इन हरकतों से परेशान जयपुर का तत्कालीन शासक प्रतापसिंह इनसे मुक्ति का प्रयास कर रहा था।

प्रतापसिंह ने मराठों के विरुद्ध जोधपुर महाराजा विजयसिंह से गठबंधन किया तथा शिवपुर व करौली के शासकों ने भी इस संघ को सैनिक सहयोग दिया। इनके अतिरिक्त महादजी का साथी मुगल फौजदार मोहम्मद बेग हमदानी भी राजपूतों के साथ हो गया था। अतः 28 जुलाई, 1787 को लालसोट के पास तूंगा नामक स्थान पर मराठों (महादजी सिंधिया) और 'राठौड़ कच्छवाहा गठबंधन' की सेनाओं के मध्य युद्ध हुआ। भंयकर रक्तपात के बाद भी युद्ध अनिर्णायक रहा। महादजी पीछे हट गया और राजपूत सेना का पलड़ा भारी रहा।

तूंगा के युद्ध के बाद भी मराठे राजपूत राज्यों पर अपना प्रभुत्व छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। अतः मराठों व राजपूतों के मध्य 20 जून, 1790 को पाटन का युद्ध हुआ जिसमें मराठा सेना को निर्णायक विजय मिली। राजपूत सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया।

जयपुर शासक प्रतापसिंह ने मराठों से मुक्ति का एक प्रयास और किया। उसने जोधपुर की सहायता से 16 अप्रेल, 1800 को मालपुरा में पुनः मराठों से युद्ध किया। किंतु इस बार भी विजय मराठों के हाथ ही लगी। अतः जयपुर राज्य को पुनः मराठों से संधि करनी पड़ी।

कृष्णाकुमारी विवाद

मेवाड़ की राजकुमारी कृष्णाकुमारी से विवाह को लेकर जयपुर के शासक जगतसिंह और जोधपुर के शासक मानसिंह के मध्य युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गयी। कृष्णाकुमारी मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह की पुत्री थी, जिसकी सगाई मारवाड़ के शासक भीमसिंह के साथ तय हुई थी, किंतु विवाह से पूर्व ही भीमसिंह की मृत्यु हो गई। भीमसिंह की मृत्यु के बाद मेवाड़ के शासक भीमसिंह ने कृष्णाकुमारी का रिश्ता जयपुर के शासक जगतसिंह के साथ तय कर दिया, पर इस रिश्ते को मारवाड़ के नये शासक मानसिंह ने मारवाड़ का अपमान माना और मानसिंह ने मेवाड़ पर आक्रमण का निश्चय किया। इस घटनाक्रम के कारण एक बार पुनः मराठों एवं अमीर खाँ पिण्डारी को मेवाड़ व मारवाड़ की आन्तरिक स्थिति में हस्तक्षेप का अवसर प्राप्त हुआ। मारवाड़ के शासक मानसिंह का पक्ष लेते हुए अमीर खाँ पिण्डारी ने मेवाड़ में डेरा डाल दिया। अमीर खाँ पिण्डारी ने कृष्णाकुमारी की शादी मानसिंह से करने या कृष्णाकुमारी की हत्या करने का प्रस्ताव रखा और उसकी बात नहीं मानने पर मेवाड़ को उजाड़ने की धमकी दी। अंत में मेवाड़ महाराणा भीमसिंह ने, जो अमीर खाँ से मेवाड़ की रक्षा करने में असमर्थ था और मानसिंह से कृष्णाकुमारी की शादी नहीं करना चाहता था, 21 जुलाई, 1810 को जहर पिला कर अपनी ही पुत्री की हत्या कर दी। मात्र 16 वर्षीय अपनी पुत्री की यह हत्या मेवाड़ के भीमसिंह पर ही नहीं, समस्त मेवाड़ की शान पर एक धब्बा था। राजस्थान में मराठा हस्तक्षेप का यह सबसे काला अध्याय था।

जोधपुर का उत्तराधिकार संघर्ष

राजस्थान में सबसे महत्त्वपूर्ण उलझन जोधपुर राज्य के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर उत्पन्न हुई थी और वह कई वर्षों तक चलती रही। जोधपुर के महाराजा अभयसिंह का भाई बख्तसिंह, अभयसिंह को गद्दी से हटाकर कर स्वयं जोधपुर का शासक बनना चाहता था। जून, 1749 ई. में अभयसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र रामसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठा। नवम्बर, 1750 ई. में बख्तसिंह ने रामसिंह को परास्त कर उससे जोधपुर की गद्दी हथिया ली। रामसिंह भागकर जयपुर आया और माधोसिंह से शरण प्राप्त कर मराठों से सहायता प्राप्त करने का प्रयास करने लगा। 1752 ई. में जब बख्तसिंह ने अजमेर पर अधिकार कर लिया तब उसका विरोध करने के लिए मराठों को एक नया कारण मिल गया, क्योंकि मराठे स्वयं अजमेर पर अधिकार करना चाहते थे।

21 सितम्बर, 1752 ई. को बख्तसिंह की मृत्यु हो गयी, तब उसका पुत्र विजयसिंह जोधपुर की गद्दी पर बैठा। उधर रामसिंह जोधपुर की गद्दी प्राप्त करने हेतु मराठों से सहायता प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था। अतः जून, 1753 ई. में रघुनाथराव ने रामसिंह को पुनः जोधपुर की गद्दी पर बैठाने के लिए जयप्पा सिन्धिया को जोधपुर पर आक्रमण करने भेजा। 15 सितम्बर, 1753 ई. को मेड़ता के पास दोनों पक्षों में भीषण युद्ध हुआ, जिसमें विजयसिंह परास्त होकर नागौर की तरफ भागा और नागौर दुर्ग में शरण ली। विजयसिंह मराठों से लम्बे समय तक मुकाबले की स्थिति में न था। वह उनसे संधि करने को विवश हो गया, फरवरी 1756 में इनके बीच संधि हुई। इस सन्धि की शर्तें इस प्रकार थीं – (1) अजमेर और गढ़ बीटली (तारागढ़) मराठों के अधिकार में रहेंगे। (2) जालोर सहित आधा मारवाड़ जिसमें साम्भर, मारोठ, सोजत, परबतसर और केकड़ी के 84 गाँव सम्मिलित थे, पर रामसिंह का अधिकार मान लिया गया और जोधपुर, नागौर तथा मेड़ता पर विजयसिंह का प्रभुत्व मान लिया गया। (3) विजयसिंह ने युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में 50 लाख रुपये मराठों को देना स्वीकार किया जिसमें 25 लाख प्रथम वर्ष में और शेष राशि आगामी दो वर्षों में दो किश्तों में देनी थी। (4) रामसिंह ने अपनी सहायता के बदले मराठों को 5 लाख रुपये देना स्वीकार किया। (5) जोधपुर राज्य डेढ़ लाख रुपये वार्षिक कर के रूप में मराठों को देगा। (6) रामसिंह द्वारा विजयसिंह की सीमा का अतिक्रमण करने पर विजयसिंह सैनिक कार्यवाही के लिये स्वतन्त्र था।

राजस्थान के उपर्युक्त प्रमुख राज्यों के साथ–साथ लगभग सभी राज्यों में मराठों का प्रवेश और उनका हस्तक्षेप आरम्भ हो गया था। केवल बीकानेर और जैसलमेर ऐसे राज्य थे जो मराठों की लूटमार से बचे रहे। शेष सम्पूर्ण राजस्थान पर धीरे–धीरे मराठों का वर्चस्व स्थापित हो गया। आगे चलकर मराठों के सहयोगी रहे पिण्डारियों ने भी अपने स्वतन्त्र दल संगठित कर राजस्थान में लूटमार आरम्भ कर दी। राजस्थान के राज्य कभी भी अधिक सम्पन्न न रहे और अब तो उनकी आर्थिक दशा अत्यंत खराब हो गई थी।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

1. कालीबंगा राजस्थान के किस जिले में स्थित है?
   (अ) सीकर (ब) जयपुर
   (स) श्रीगंगानगर (द) हनुमानगढ़
2. राजपूतों की अग्निकुंड से उत्पत्ति का सिद्धांत किसने दिया था?
   (अ) चंदरबरदाई (ब) अमीर खुसरो
   (स) चंद्रशेखर (द) बरनी
3. पद्मिनी किस शासक की पत्नी थी?
   (अ) सांगा (ब) रतन सिंह
   (स) राज सिंह (द) मानसिंह
4. पृथ्वीराज तृतीय ने किस वर्ष महोबा के चंदेल शासक को परास्त किया था?
   (अ) 1181 ई. (ब) 1182 ई.
   (स) 1191 ई. (द) 1192 ई.
5. कृष्णा कुमारी किस राज्य की राजकुमारी थी?
   (अ) मेवाड़ (ब) जयपुर
   (स) मारवाड़ (द) बीकानेर

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. गणेश्वर सभ्यता किस जिले में तथा किस नदी के किनारे अवस्थित है?
2. राजपूतों को विदेशी आक्रमणकारी किसने स्वीकार किया है?
3. राजस्थान के चार उत्तर पाषाणकालीन स्थलों के नाम लिखिये?
4. महाभारत काल में मत्स्य जनपद का शासक कौन था?
5. अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय चित्तौड़ का शासक कौन था?
6. राणा सांगा की समाधि कहां स्थित है?
7. दिवेर का युद्ध कब व किनके मध्य लड़ा गया था?
8. 'रूठी रानी' के नाम से कौन प्रसिद्ध है?
9. सुमेलित कीजिए

राजवंश	संस्थापक
1. राठौड़	वासुदेव
2. चौहान	सीहा
3. जाट	दुलहराय
4. कच्छवाहा	चूड़ामन

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. मुगलकाल में राजस्थान की सामंत प्रथा में क्या परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए थे?
2. तूंगा के युद्ध (1787 ई.) पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
3. हुरड़ा सम्मेलन क्यों असफल रहा? कारण सहित समझाइए।
4. आबू के परमार वंश का संक्षिप्त परिचय दीजिये।
5. कान्हड़देव तथा अलाउद्दीन खिलजी के संबंधों पर प्रकाश डालिये।
6. संयोगिता–स्वयंवर कथा की ऐतिहासिकता का परीक्षण कीजिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. राजपूतों की उत्पत्ति को लेकर प्रचलित विभिन्न मतों का परीक्षण कीजिये।
2. अकबर व मेवाड़ के शासकों के संबंधों पर एक विस्तृत लेख लिखिये।

परियोजनात्मक कार्य :

1. राजस्थान के विभिन्न राजवंशों को मानचित्र में अंकित कीजिए तथा उनके राजाओं के चित्र एकत्रित कीजिए।

कल्पना करें :

1. आप मध्यपाषाण काल के निवासी होते तो आपका जीवन कैसा होता, इस हेतु आप अन्य पुस्तकों की भी मदद ले।